अधिकार हों सबके लिए

धारा 377 के तहत यौनिकता-आधारित भेदभाव को खत्म करने की ओर

संकलन

वॉयसिज़ अगेन्स्ट 377

अधिकार हों सबके लिए

धारा 377 के तहत यौनिकता-आधारित भेदभाव को खत्म करने की ओर

संकलन

वॉयसिज़ अगेन्स्ट 377

2005

अंग्रेज़ी संस्करण : 2004

हिन्दी संस्करण : 2005

हिन्दी अनुवाद : पूर्वा भारद्वाज, जया शर्मा, सुनीता भदौरिया, सुनीता ठाकुर

सम्पादन : पूर्वा भारद्वाज, जया शर्मा

मुद्रक : दृष्टि विज़न, फोन : 9810277025, 9810529858

प्रतियों के लिए सम्पर्क करें :

निरंतर

बी–64, दूसरी मंज़िल, सर्वोदय इनक्लेव, नई दिल्ली–110017

फोन : 26966334, 26517726 E-mail : nirantar@vsnl.com

इस रिपोर्ट के अंशों का आप उपयोग कर सकते हैं। केवल वॉयसिज़ अगेन्स्ट 377 को सूचित ज़रूर करें।

भारतीय दण्ड संहिता, धारा 377 (अप्राकृतिक अपराध) : "जो भी कोई स्वेच्छा से किसी पुरुष, महिला या पशु के साथ प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कामुक संभोग करता है, उसे आजीवन कारावास या फिर 10 वर्षों तक बढ़ाई जा सकने वाली अवधि के लिए कैद की सज़ा दी जा सकती है और जुर्माना भी हो सकता है।"

वॉयसिज़ अगेन्स्ट 377 दिल्ली में स्थित महिलाओं के अधिकार, बाल अधिकार, मानव अधिकार, यौनिक अधिकार, स्वास्थ्य के अधिकार व समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों के अधिकार पर काम करने वाले समूहों का एक साझा मंच है। वर्तमान में वॉयसिज़ अगेन्स्ट 377 के सदस्य हैं :

एमनेस्टी इन्टरनेशनल इंडिया, मानव अधिकारों के लिए अभियान
अंजुमन, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का क्वीयर समूह
ब्रेकथ्रू, मानव अधिकारों पर टिकी संस्कृति के निर्माण में कार्यरत संस्था
क्रीया, नई पीढ़ी की महिलाओं के नेतृत्व निर्माण में कार्यरत संस्था
हक, बच्चों के अधिकारों के लिए कार्यरत केन्द्र
जागोरी, महिला संदर्भ केन्द्र
निगाह मीडिया कलेक्टिव, जेण्डर और यौनिकता पर चर्चा की एक जगह
निरंतर, जेण्डर और शिक्षा संदर्भ केन्द्र
पार्टनर्स फॉर लॉ इन डिवलेपमेंट, कानूनी संदर्भ केन्द्र
प्रिज़्म, यौनिकता से जुड़े मुद्दों पर कार्यरत मंच
सहेली, महिला संदर्भ केन्द्र, स्वायत्त महिला समूह
समा, महिला और स्वास्थ्य संदर्भ समूह
तार्शी, प्रजनन व यौन जीवन में विकल्पों के लिए कार्यरत संस्था

जो व्यक्ति/समूह अधिक जानकारी पाना चाहें या सहयोग प्रदान करना चाहें, वे कृपया voicesagainst377@rediffmail.com पर सम्पर्क करें।

विषय–सूची

परिचय	1
कुछ परिभाषाएं	5
धारा 377 के बारे में तथ्य	7
साक्ष्य : मेरी कहानी	*9*
महिला आंदोलन का एक नज़रिया	12
साक्ष्य : हिजड़ों और कोथियों के अधिकारों का हनन	*16*
धारा 377 और बाल यौन उत्पीड़न	18
साक्ष्य : पुलिस द्वारा उत्पीड़न	*21*
धारा 377 और मानव अधिकारों का उल्लंघन	22
धारा 377 के विरुद्ध ऐमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया का बयान	25
साक्ष्य : मानसिक स्वास्थ्य संस्थाओं के साथ हुए अनुभव	*27*
यौनिकता और मानसिक स्वास्थ्य	28
सुधारात्मक चिकित्सा, धारा 377 और मानव अधिकारों का उल्लंघन	31
साक्ष्य : पुनः यौन निर्धारण (सेक्स रीअसाइनमेंट) सर्जरी को मान्यता नहीं देना	*32*
धारा 377 और एच.आई.वी./एड्स हस्तक्षेप व रोकथाम के प्रयास	33
परिशिष्ट	36
धारा 377 – पर्चा	36
समान तथा अहस्तनान्तरणीय अधिकार – पर्चा	37
जीने का अधिकार : रद्द – पर्चा	38
समलैंगिक इच्छा और मानसिक स्वास्थ्य	39
हल्ला बोल!	42
दायां हाथ नहीं जानता कि बायां हाथ क्या कर रहा है	44
सरकार के हलफनामे पर एक खुला पत्र	45
धारा 377 से जुड़ी याचिका का घटना क्रम	48
प्रैस विज्ञप्ति – दिल्ली में धारा 377 के खिलाफ जन प्रदर्शन	49

परिचय

हम एक ऐसे समाज में रहते हैं जिसमें एक ही तरह की यौनिकता को मान्यता दी जाती है – शादी के रिश्ते में बंधे हुए औरत और मर्द की। एकमात्र उसी को 'प्राकृतिक' और 'सामान्य' बताया जाता है। इसमें भी मर्द की यौनिकता निर्णायक और प्रधान है। औरत की यौनिकता तो वंश चलाने का एक ज़रिया भर है। यहां तक कि औरत या मर्द होने का क्या मतलब है, दोनों के बीच क्या रिश्ता हो, उनकी भूमिकाएं क्या हों और इनके मुताबिक परिवार का स्वरूप क्या हो – इन सबका सामाजिक ताकतें ऐसा रूपतय करती हैं जिनसे कि समाज में गैर–बराबरी बनी रहे। इन सामाजिक ताकतों में महत्त्वपूर्ण है पितृसत्ता, जिसे बरकरार रखने के लिए विषमलैंगिकता (यौनिकता का वो रूप जिसमें केवल औरत और मर्द के बीच आकर्षण हो) और जेण्डर की एक संकीर्ण परिभाषा की ज़रूरत होती है। अगर औरत में औरतों से अपेक्षित गुण न हों, मर्द में मर्दो से जुड़े गुण न हों और ये शादी में बंध कर अपनी तय भूमिकाएं निभाते हुए परिवार न बनाएं, तो पितृसत्ता की व्यवस्था चलेगी कैसे? वे सभी जो इस 'आदर्श संरचना' के बाहर जीने की हिम्मत रखते हैं, उन्हें नैतिकता और समाज के लिए खतरा माना जाता है। इस खतरे के कारण सामाजिक व्यवस्था या तो इस 'आदर्श संरचना' से अलग जाने वालों के अस्तित्व को पूरी तरह नकार देती है या उन्हें यह कहकर अस्वीकार कर देती है कि वे पश्चिमी सभ्यता की उपज हैं। जैसे कहा जाता है कि 'हमारे समाज में लेस्बियन औरतें हैं ही नहीं' या 'पश्चिमी रंग में रंगे हुए उच्च वर्ग के मुट्ठी भर शहरी युवक ही गे हैं।' जब उनकी उपस्थिति को अनदेखा करना मुश्किल हो जाता है, तो उन्हें इस तरह दण्डित किया जाता है कि उनके लिए स्वतंत्र व गरिमामय जीवन जीना दूभर हो जाता है।

पिछले कुछ दशकों में समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों, जिनमें लेस्बियन (औरत जो औरत के प्रति आकर्षित है), गे (मर्द जो मर्द के प्रति आकर्षित है), बाइसेक्स्युअल (औरत और मर्द दोनों के प्रति आकर्षित), ट्रान्सजेंडर्ड (औरत और मर्द की परिभाषा में नहीं बंधे हुए), हिजड़ा आदि शामिल हैं, की ओर से हिंसामुक्त और भयमुक्त, गरिमामय जीवन के संवैधानिक मानव अधिकार की मांग भारत के अलग–अलग कोनों से उठ रही है। यह आंदोलन ऐसे लोगों के विरुद्ध हो रहे मानव अधिकारों के हनन का विरोध कर रहा है। उनके संघर्षों के इतिहास का दस्तावेज़ीकरण कर रहा है। लोगों की आपबीती के माध्यम से टकराहट और सहयोग दोनों के अनुभवों को सामने ला रहा है। अन्य प्रगतिशील आंदोलनों के साथ जुड़ाव बनाने की कोशिश भी जारी है ताकि संगठित होकर उन सामाजिक ताकतों को चुनौती दी जा सके जो परिभाषित 'आदर्श संरचना' से बाहर रहने वालों को प्रताड़ित करती हैं।

इस रिपोर्ट का विषय भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 है, जो 'प्राकृतिक नियम के विरुद्ध' माने जाने वाले स्वैच्छिक यौन संबंध को आपराधिक मानती है और आज यौनिक अधिकारों के आंदोलन में एक मुख्य बाधा बनी हुई है। विडम्बना यह है कि दावा किया जाता है कि 1860 में पास हुआ अंग्रेज़ी औपनिवेशिक कानून आज भी हमारे समाज के लिए उपयुक्त है। यह कानून ऐसे सभी यौनिक व्यवहारों को आपराधिक करार करने के लिए बनाया गया था जो प्रजनन प्रक्रिया से जुड़े नहीं हैं। इस कानून के अंतर्गत, दो वयस्कों के बीच समलैंगिक यौनिक गतिविधियां या एक विषमलैंगिक शादीशुदा जोड़े के बीच

मुख मैथुन से लेकर सभी 'अप्राकृतिक क्रियाएं' अपराध हैं। फिर भी हमारे समाज में व्याप्त होमोफोबिया (समलैंगिकता के प्रति भय) यह सुनिश्चित करता है कि केवल पहली स्थिति (दो वयस्कों के बीच समलैंगिक यौनिक व्यवहार) को ही दण्डित किया जाए।

धारा 377 के बारे में हमारी मुख्य चिंताएं क्या हैं? यौनिकता और जेण्डर की विविधता पर धारा 377 एकरूपता थोपना चाहती है। क्या 'प्राकृतिक' है और क्या 'सामान्य' है – इन अवधारणाओं को यह मान्यता देती है ताकि पितृसत्ता और विषमलैंगिकता से जुड़ी शादी एवं परिवार जैसी सामाजिक संस्थाएं और उनमें निहित गैर–बराबरी बनी रहे। यह समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों को दण्डित करने की अनुमति देती है। इनके मानव अधिकारों का उल्लंघन राज्य व पुलिस, परिवार, मीडिया और चिकित्सा जैसे विविध राजकीय एवं गैर–राजकीय पात्रों द्वारा बार–बार होता है। पुलिस द्वारा यौनिक अत्याचार और शोषण, ज़बरदस्ती पैसे ऐंठना, मानसिक चिकित्सा संस्थाओं में बिजली के झटके और तेज़ दवाएं देकर 'मरीज़' की यौनिकता को बदलने की कोशिश करना और हर रोज़ होने वाले सामाजिक लांछन और भेदभाव – ऐसे मानव अधिकार उल्लंघनों का दस्तावेज़ीकरण कई तथ्य–जांच की रिपोर्ट और अध्ययन करते हैं। लेकिन बार–बार घटने वाले इन गंभीर उल्लंघनों को समाज ने अभी तक नहीं समझा है। व्यक्तिगत ज़िंदगी के अनुभव भी हमें बताते हैं कि यह कानून मित्रों, परिवार वालों, सहकर्मियों आदि द्वारा खुले रूप से भिन्न यौनिक प्रवृत्तियों को स्वीकार करने में एक मुख्य बाधा है। जो सामाजिक कार्यकर्ता इन उपेक्षित लोगों के बीच शिक्षा, सहयोग और पैरवी करने के लिए प्रतिबद्ध हैं, उन्हें भी कानूनी रूपसे अपराधी ठहराए जाने का खतरा है।

इसके अलावा धारा 377 और बाल यौन उत्पीड़न के मामलों में इसके उपयोग ने बाल अधिकार कार्यकर्त्ताओं को हताश किया है। उनका तर्क है कि धारा 377 बाल यौन उत्पीड़न से निपटने के लिए नहीं बनाया गया था। इसलिए वह बाल यौन उत्पीड़न के मामलों की जटिलता और ज़रूरतों को समझने में पूरी तरह से असमर्थ है। डर यह है कि जब तक धारा 377 बनी रहेगी, बाल यौन उत्पीड़न पर अलग से कोई विशेष उपयुक्त कानून नहीं बन पाएगा।

धारा 377 के विरुद्ध सबसे पहली याचिका सन् 1994 में एड्स भेदभाव विरोधी आंदोलन (ए.बी.वी.ए.) द्वारा दायर की गई थी। सन् 2001 में नाज़ फाउण्डेशन, इण्डिया ने लॉयर्स कलेक्टिव के माध्यम से दिल्ली उच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका (पी.आई.एल.) दायर की। सन् 2003 में सरकार ने न्यायालय को जो जवाब दिया, उससे ज़ाहिर है कि धारा 377 को चुनौती देना आसान नहीं होगा। सरकार का तर्क था कि आमतौर पर भारतीय समाज समलैगिंकता को अनुचित समझता है, और इसे अपराध करार देने के लिए यह कारण ही काफी है। इसके अलावा बाल यौन उत्पीड़न के मामलों में कानूनी कार्यवाही करने के लिए और समाज को नैतिक गिरावट से बचाने के लिए सरकार धारा 377 की ज़रूरत को सही करार देती है।

सितंबर 2004 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने याचिका रद्द की, यह कहते हुए कि याचिका सिर्फ उस समुदाय द्वारा दर्ज की जा सकती है, जो इस कानून से सीधे रूपसे प्रभावित हैं। नाज़ ने इस फैसले पर पुनः विचार के लिए उच्च न्यायालय में एक 'रिव्यू पेटिशन दर्ज़ किया। पेटिशन में नाज़ ने तर्क दिया कि नाज़ को धारा 377 से प्रभावित समुदाय की ओर से याचिका दर्ज़ करनी पड़ी क्योंकि धारा 377 के रहते अपने पहचान के खुलासे और पुलिस उत्पीड़न के डर की वजह से समलैंगिक समाज खुद सीधे अदालत तक नहीं जा सकता। लेकिन उच्च न्यायालय ने रिव्यू पेटिशन खारिज कर दिया। कई

समूहों की राय लेते हुए, नाज़ ने सर्वोच्च न्यायालय से उच्च न्यायालय के याचिका खारिज करने के सीमित बिन्दु पर अपील की। मामले की सुनवाई के दौरान सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यह एक सार्वजनिक हित का मामला है और एक ऐसा मसला है जिस पर दुनिया भर में चर्चा चल रही है। अदालत ने सरकार को निर्धारित समय के अन्दर इस बात पर जवाब देने के लिए कहा है कि जनहित याचिका वैध है या नहीं।[1]

धारा 377 के मूलभूत मुद्दों के संदर्भ में, यह देखना बाकी है कि क्या सरकार 'सामाजिक मूल्यों' के नाम पर अपने नज़रिए को लागू करने का अधिकार हथियाएगी? क्या वो इस अधिकार को समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों की आज़ादी, सम्मान और अधिकारों से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण ठहराएगी?

लेकिन सार्वजनिक नैतिकता का फौजदारी कानून से क्या रिश्ता है? कौन तय करता है कि 'नैतिक' क्या है और 'प्राकृतिक' क्या है? अकेले भारत में ही समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोग, विधवाएं, मुसलमान, दलित आदि – सभी लोग 'अनैतिक' और 'अप्राकृतिक' ठहराए जाने की ऐसी कहानियां सुना सकते हैं जो उनकी अपनी हैं लेकिन सबकी भी। अगर मान लें कि इस देश के अधिकांश लोग अंतर्जातीय विवाह पर रोक लगाने का निर्णय लेते हैं, क्योंकि वह 'सामाजिक मूल्यों के विरुद्ध' है, तो क्या इस मत के आधार पर कानून को संशोधित किया जाना चाहिए? बिल्कुल नहीं। भारत का संविधान एवं उसके द्वारा मान्य ठहराए गए कानूनों का सबसे पहला और प्रमुख कार्य है सबके स्वतंत्रता और जीवन के मौलिक अधिकारों को सुनिश्चित करना तथा उनकी रक्षा करना। समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों को किस आधार पर इन अधिकारों से वंचित किया जाता है? कानून हमारे आदर्शों की प्रतिष्ठा और सुरक्षा का वाचक होना चाहिए। वह समाज के पीछे नहीं चल सकता, बल्कि उसे समाज की अगुवाई करनी चाहिए। कानून अगर सिर्फ जनता की राय पर टिका होता, तो सती और दहेज विरोधी कानून कभी बनते ही नहीं।

ऐसे ही मुद्दे उठाने और यौनिकता, खासकर समलैंगिकता पर संवाद छेड़ने और गहरा करने के उद्देश्य से 'वॉयसिज़ अगेन्स्ट 377' (धारा 377 के खिलाफ आवाज़ें) नाम का मंच शुरू हुआ। इसमें अलग–अलग मुद्दों पर काम करने वाले समूह शामिल हैं, जैसे महिलाओं के अधिकार, यौनिक अधिकार, बाल अधिकार और मानव अधिकार पर काम करने वाले समूह। समलैंगिक इच्छा का अपराधीकारण एक सामाजिक न्याय का मुद्दा है जिससे सभी का सरोकार है, उनकी जेंडर और यौनिक पहचान जो भी हो।

इस रिपोर्ट के दो उद्देश्य हैं – पहला, सरकार के दावे (कि भारतीय जनता समलैंगिकता को स्वीकार नहीं करती है) को चुनौती देने के लिए यौनिक अधिकारों की समर्थक विभिन्न आवाज़ों को एकजुट करना और दूसरा, विशेष रूप से यह दिखाना कि किस तरह धारा 377 समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों के अधिकारों, महिलाओं के अधिकारों और बाल अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। इस रिपोर्ट के लेख दर्शाते हैं कि किस तरह यह कानून एच.आई.वी./एड्स की रोकथाम के प्रयासों को प्रभावित करता है, किस तरह यह बाल यौन उत्पीड़न के प्रभावी प्रयासों को सीमित करता है। साथ–साथ इस गलत धारणा को बढ़ावा देता है कि समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों के अधिकार बाल अधिकारों के विरुद्ध हैं। एक अन्य लेख में बताया गया है कि किस तरह मानसिक स्वास्थ्य व्यावसायिकों द्वारा समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों के अधिकारों का हनन किया जाता है और किस प्रकार धारा 377 मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र

[1] *जनहित याचिका से जुड़े घटना क्रम के लिए परिशिष्ट देखें।*

में समलैंगिकता विरोधी विचारधारा को बनाए रखती है। इस रिपोर्ट में शामिल एक लेख महिलाओं के अधिकारों का यौनिकता के साथ जुड़ाव बैठाता है। यौनिक अधिकारों को हमारे मूल मानव अधिकारों के तहत रखकर भी देखा गया है इस रिपोर्ट में।

बहुत लम्बे समय से यौनिक अधिकार कानून, आंदोलनों और समाज की परिधियों पर ही कायम रहे हैं। अब बहुत ज़रूरी है कि बड़ी संख्या में लोगों व समुदायों के विरुद्ध व्याप्त इस भेदभाव को रोका जाए। सहमति–प्राप्त वयस्क समलैंगिक क्रियाओं के गैर–अपराधीकरण की मांग – धारा 377 के विरुद्ध एक बड़े अभियान की ओर पहला कदम है, जो अंततः इस धारा को रद्द करने और साथ ही बाल यौन उत्पीड़न पर एक प्रभावी कानून का प्रारूप तैयार करने की ओर बढ़ेगा। और तभी अपने लोकतंत्र और आज़ादी पर इतना गर्व करने वाला देश उन तमाम लोगों के लिए सुरक्षित होगा जो इसकी धरती पर डर–डरकर जी रहे हैं। यौनिकता कानून, समाज और आंदोलनों के हाशियों पर बहुत लम्बे समय तक रहा है। इस स्थिति को बदलने की दिशा में जो प्रयास किए जा रहे हैं, उनकी ही एक कड़ी है यह रिपोर्ट।

कुछ परिभाषाएं

इस रिपोर्ट का हिन्दी में अनुवाद करते समय हमारे सामने कुछ चुनौतियां आईं। यौनिकता को लेकर हमारे समाज में जो चुप्पी है उसका एक नतीजा यह है कि अक्सर हमारे पास हिन्दी (या अन्य स्थानीय भाषाओं) में उपयुक्त शब्द नहीं होते। इसके अलावा मामला सिर्फ अंग्रेज़ी शब्दों के अनुवाद का नहीं। हम कौन–सा शब्द चुनते हैं, वो हमारी समझ, हमारा नज़रिया भी झलकाता है। नीचे दी गई सूची में हमने अंग्रेज़ी शब्दों के अनुवाद के साथ कुछ शब्दों के इस्तेमाल से जुड़ी समझ को भी समेटने की कोशिश की है।

समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोग/सेम सेक्स डिज़ायरिंग पीपल – इसमें वे सभी लोग शामिल हैं जो अपने लिंग के लोगों के प्रति आकर्षित हैं। इनमें वे भी शामिल हैं जो अपने और दूसरे, दोनों लिंग के लोगों के प्रति आकर्षित हैं। यह ज़रूरी नहीं कि समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोग अपनी पहचानों (जैसे औरत, मर्द, दलित, हिन्दू, मुसलमान इत्यादि) में यौनिकता से जुड़ी पहचान भी शामिल करें। जो लोग अपनी पहचान को यौनिकता से जोड़ते हैं जैसे कि गे, लेस्बियन इत्यादि, उनमें से ज़्यादातर ऐसे लोग हैं जिन्हें इस तरह की पहचान के बारे में जानकारी है। इनमें से कई लोग शहरी मध्यम वर्ग के हैं। यौनिकता से जुड़ी कुछ स्थानीय पहचानें भी हैं जैसे कि जोगप्पा, पार्वती, शिवशक्ति, जोग्ता इत्यादि। (ये सभी पहचानें उनसे जुड़ी हैं जो शारीरिक रूपसे पुरुष हैं।) वैसे संख्या शायद गांवों और कस्बों में रहने वाले उन लोगों की ज़्यादा है जो समलैंगिक इच्छा महसूस करते हैं, पर इन पहचानों के साथ अपने को नहीं जोड़ते। इस रिपोर्ट में 'समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोग' शब्द इसलिए इस्तेमाल किए गए हैं ताकि हम समलैंगिक इच्छा रखने वाले सभी लोगों को शामिल कर सकें – वे जिन्होंने अपनी पहचान यौनिकता से जोड़ी है और वे जिनकी यौनिकता के आधार पर कोई विशेष पहचान नहीं है।

समलैंगिक/होमोसेक्स्युअल – वे लोग जो समान लिंग के प्रति आकर्षित हों।

द्विलैंगिक/बाइसेक्स्युअल – वे जो औरत और मर्द दोनों के प्रति आकर्षित हों।

विषमलैंगिक/हैट्रोसेक्स्युअल – वे जो केवल दूसरे लिंग की ओर आकर्षित हों।

लेस्बियन – वे औरतें जो औरतों के प्रति आकर्षित हों।

गे – वे मर्द जो मर्दों के प्रति आकर्षित हों।

ट्रान्सजेंडर्ड – औरत और मर्द की परिभाषा में नहीं बंधे हुए। उदाहरण के लिए कोई शारीरिक रूपसे मर्द हो सकते हैं लेकिन वो अपने जेण्डर को 'मर्द' नहीं 'औरत' बताते हैं। या फिर वे अपने को इन दोनों अलग–अलग खाकों में बंधकर नहीं देखते।

एल.जी.बी.टी. – लेस्बियन, गे, बाइसेक्स्युअल और ट्रान्सजेंडर्ड।

हिजड़ा – इस समुदाय में वे शामिल हैं जो शारीरिक रूपसे मर्द पैदा हुए थे, लेकिन जिन्होंने या तो अपना लिंग कटवाया है या लिंग परिवर्तन की प्रक्रिया किसी भी स्तर तक करवाई है या फिर अपने शरीर

को बदले बिना 'हिजड़ा' पहचान अपनाई है (माना जाता है कि हिजड़ा समाज में आखिरी श्रेणी की संख्या सबसे ज़्यादा है।) हिजड़ा समुदाय में वे भी शामिल हैं जिनके जन्म के समय लिंग और योनि, दोनों यौन अंग होते हैं। (इस श्रेणी में आने वाले लोगों को अंग्रेज़ी में इंटर–सेक्स्ड या हरमाफ्रोडाइट कहते हैं।)

कोथी – शारीरिक तौर पर मर्द जो मर्दों के साथ यौन क्रियाएं करते हैं और अपने को महिला महसूस करते हैं। कोथी अधिकतर आर्थिक रूपसे कमज़ोर वर्ग के होते हैं।

एम.एस.एम. – मैन हू हैव सेक्स विद मैन – वे मर्द जो दूसरे मर्दों के साथ यौनिक क्रियाएं करते हैं। इनमें उन मर्दों को शामिल करने का प्रयास है जो अपने आपको 'गे' या 'बाइसेक्स्युअल' जैसी पहचानों से नहीं जोड़ते। एम.एस.एम. अपने आपको मर्द की तरह महसूस करते हैं।

यौनिक अल्पसंख्यक – यह शब्द उन सभी के लिए इस्तेमाल किया जाता है जो कि अपने लिंग के लोगों के प्रति आकर्षित हैं। इस श्रेणी में ट्रान्सजेंडर्ड लोग भी शामिल हैं।

क्वीयर – एक ऐसा शब्द जिसमें वे सभी लोग व नज़रिए भी शामिल हैं, जो मुख्यधारा द्वारा मान्य जेण्डर और यौनिकता की परिभाषाओं को चुनौती देते हैं। क्वीयर नज़रिए के मुताबिक हमारे प्रयास सिर्फ समाज के 'एक हिस्से' के लिए 'समान' अधिकार मांगने तक सीमित नहीं। जेण्डर और यौनिकता से जुड़ी अवधारणाएं हम सभी को प्रभावित करती हैं, केवल समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों को नहीं। सिर्फ 'समान' अधिकार की बात नहीं, बल्कि यह नज़रिया मूलभूत बदलाव की मांग करता है। यह पितृसत्ता जैसी उन सभी सामाजिक व्यवस्थाओं और विचारधाराओं पर सवाल उठाता है जो अन्याय की स्थिति बनाए रखते हैं।

क्वीयर नज़रिया रखने वाले लोगों का मानना है कि यौनिकता कोई बंधी बंधाई चीज़ नहीं। लेकिन समाजीकरण की प्रक्रियाएं ऐसी हैं कि हम सबको यही अहसास दिलाया जाता है कि दूसरे लिंग के व्यक्ति के प्रति आकर्षित होना ही 'प्राकृतिक' और 'मान्य' है। इस तरह यौनिक विविधता को दबाया जा सकता है। इसलिए किसी 'विषमलैंगिक' पहचान वाले व्यक्ति में भी अन्य तरह की यौनिक सम्भावनाएं हो सकती हैं – यह स्वीकारने की मांग करता है क्वीयर नज़रिया। यही वजह है कि क्वीयर नज़रिया यौनिक 'अल्पसंख्यक' और 'बहुसंख्यक' की पूर्व निर्धारित श्रेणियों को नहीं मानता। क्वीयर नज़रिया रखने वालों में यौनिकता पर आधारित पहचानों को लेकर भी चिन्तन चल रहा है। एक तरफ तो ऐसी पहचानें ज़रूरी हैं – अपनी यौनिकता को अपनाने, आपसी सहयोग बढ़ाने और संगठित रूपसे उत्पीड़न का विरोध करने के लिए। लेकिन क्वीयर नज़रिया यौनिकता पर आधारित पहचानों और उनके अपने 'नियमों' में बंधने का भी खतरा उजागर करता है। आखिर क्या 'मान्य' है, क्या 'अनिवार्य' है, इसे चुनौती देना क्वीयर नज़रिए का मूल मंत्र है।

धारा 377 के बारे में तथ्य

धारा 377 (अप्राकृतिक अपराध) : "जो भी कोई स्वेच्छा से किसी पुरुष, महिला या पशु के साथ प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध स्वैच्छिक कामुक संभोग करता है, उसे आजीवन कारावास या फिर 10 वर्षों तक बढ़ाई जा सकने वाली अवधि के लिए कैद की सज़ा दी जा सकती है और जुर्माना भी हो सकता है।"

- धारा 377, भारतीय दण्ड संहिता (आई.पी.सी.), 1870, भारत में अंग्रेज़ों द्वारा लाया गया एक कानून है, जो 'प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध' यौनिक संभोग को आपराधिक करार देता है।
- धारा यह स्पष्ट नहीं करती कि 'अप्राकृतिक' यौन में क्या–क्या शामिल है, न ही यह सहमतियुक्त तथा जबरन यौन आचरण में कोई फर्क करती है।
- धारा के तहत यह स्पष्ट कहा गया है कि 'लिंग प्रवेश यौनिक संभोग को स्थापित करने के लिए पर्याप्त है।' इस व्याख्या की वजह से इसमें मुख व गुदा मैथुन जैसी क्रियाओं को शामिल किया जा सकता है।
- विषमलैंगिक संदर्भ में मुख व गुदा मैथुन – शादी के अन्दर भी – 'प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध' हैं।
- **धारा 377 के तहत आजीवन कारावास तक की सज़ा हो सकती है। यह अपराध गैर–ज़मानती है।**
- धारा 377 कुछ यौनिक क्रियाओं को आपराधिक करार देती है, लेकिन उनसे जुड़ी यौनिक पहचान को स्वीकार नहीं करती। पूरे भारतीय कानून में गैर–विषमलैंगिक यौनिक पहचान को कोई मान्यता नहीं दी गई है।
- इसे धारा 375 (यौनिक अत्याचार) और बाल यौन उत्पीड़न के मामलों में अन्य कानूनों के साथ प्रयोग किया जाता रहा है।
- कुछ मामलों में इसे महिलाओं द्वारा अपने पति के विरुद्ध बलात्कार का केस दर्ज कराने के लिए धारा 375 (यौनिक अत्याचार) और अन्य कानूनों के साथ प्रयोग किया जाता है। शादी के तहत हुए बलात्कार के खिलाफ वर्तमान बलात्कार संबंधी कानूनों में कोई प्रावधान नहीं है।
- अक्सर धारा 377 का पुलिस द्वारा समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों का शोषण करने में प्रयोग किया जाता है – सार्वजनिक जगहों पर समलैंगिक इच्छा रखने वाले पुरुषों से पैसा ऐंठने, मौखिक व यौनिक रूपसे अत्याचार के लिए। साथ ही महिलाओं के समलैंगिक जोड़ों को अलग करने के लिए भी इसे इस्तेमाल किया जाता है।
- धारा 377 समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों का शोषण करने के लिए अन्य कानूनों के दुरूपयोग करने का मार्गदर्शन करती है। इनमें निम्न शामिल हैं –

– धारा 368 आई.पी.सी.–सार्वजनिक स्थान पर ऐसा कोई भी व्यवहार जिससे जनता को चोट/खतरा/पेरशानी हो : *अस्पष्ट होने के कारण अक्सर इस्तेमाल किया जाता है।*

– धारा 292/3 आई.पी.सी. – 'अश्लील' किताबों/चीज़ों की बिक्री : *समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों के लिए सुरक्षित यौन क्रियाओं से जुड़ी सामग्री के प्रकाशन व वितरण में रुकावट डालती है।*

– धारा 294 आई.पी.सी. – सार्वजनिक 'अश्लील' गतिविधियों को दण्डित करती है जिसमें गाने भी शामिल हैं : *बहुत ही अस्पष्ट है और एच.आई.वी./एड्स की रोकथाम में भी बाधक है।*

– धारा 109 आई.पी.सी. – उकसाना, धारा 120 बी–षड्यंत्र, धारा 511–अपराध करने का प्रयत्न।

सार्वजनिक स्थानों पर समलैंगिक इच्छा रखने वाले पुरुषों से पैसा ऐंठते समय बंबई पुलिस अधिनियम की कुछ पसंदीदा धाराएं भी इस्तेमाल की जाती हैं –

– धारा 110 – सार्वजनिक स्थानों में 'अश्लील' व्यवहार

– धारा 111 – सड़क पर यात्रियों को परेशान करना

– धारा 112 – शांति भंग करने के इरादे से अभद्र व्यवहार करना

धारा 377 सहमति से की गई समलैंगिक क्रियाओं के खिलाफ इस्तेमाल किया जा सकता है। लेकिन ऐसी क्रिया हुई है – इसे स्थापित करना मुश्किल है। (ज़बरदस्ती की गई समलैंगिक यौन क्रियाओं के खिलाफ केस दर्ज करना भी मुश्किल है। जिसके साथ अपराध हुआ है, उन्हें डर रहता है कि सामाजिक धारणाएं उन्हें भी पीड़ित करेंगी।) इसलिए धारा 377 के तहत बहुत कम समलैंगिक इच्छा रखने वालों के खिलाफ केस दर्ज़ किए गए हैं। (यह जानकारी उच्च न्यायालयों तक ही सीमित है।) धारा 377 की वजह से समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों के साथ हुए मानव अधिकारों के हनन के मामले में न्याय की मांग को आसानी से नकारा जाता है।

साक्ष्य : मेरी कहानी

वह अंधेरा, ठण्डा कमरा, जो चिक से छनकर आती सूरज की रोशनी के टुकड़ों से कभी–कभार चमक उठता – उससे पंजों के बल बाहर आते हुए हम तीन थे। मेरा बड़ा भाई, मेरी छोटी बहन और बीच की मैं – न बड़ों के बीच की न छोटों के बीच की – धूप के उन टुकड़ों की तरह जिनको न हल्का कहा जा सकता है न गहरा। मैं कहीं भी फिट नहीं बैठती थी। गर्मियों की दोपहर में घर के तपते आंगन से नीम के पेड़ के पार घर के पीछे बिछी रेल की पटरी की ढलान पर भागते हम भाई–बहनों के बीच यही होड़ रहती थी कि कौन सबसे आगे तक रेल की पटरी पर सीधे चल सकता है। जब हम पकड़े जाते तो सबसे ज़्यादा डांट मुझे ही पड़ती। मैं लड़की थी और छोटी वाली बहन से बड़ी। आखिर इतनी छोटी भी नहीं कि ऐसे खेलों में उलझूं जो मेरी–जैसी बड़ी लड़कियों के लिए नहीं थे। उसके ऊपर से यह परेशानी कि मैं थप्पड़ मारती और पैर भी चलाती थी। क्या मुझे पता नहीं था कि लड़कों को मारने के लिए लड़कियां हाथ नहीं उठातीं? जवान होती अच्छी लड़कियां सुनसान दोपहर में सुनसान जगहों पर नहीं जातीं।

और जब फिल्म या स्कूल की तरफ से सैर के लिए बाहर जाना होता था, मैं शायद ही कभी 'इतनी बड़ी थी' कि समझ सकूं कि क्या सही है और क्या गलत। इसलिए अपनी छोटी बहन की तरह मुझे भी घर पर ही रहना पड़ता।

पर मैं चाहे जो भी करती, मुझसे कोई न कोई नियम टूट ही जाता। उस रेल की पटरी की तरह जो मुझसे आगे भागती ही रहती, मुझे हमेशा लगता था कि कोई अदृश्य आदर्श है जो मुझसे कहीं छूट रहा है। मुझे लगा शायद शादी से इसे प्राप्त करने में मुझे मदद मिले। शायद उससे मुझे वो परिपक्वता और सम्मान मिल जाए जो लगभग हमेशा मुझे धोखा देता रहा। मेरी गृहस्थी बस गई। मेरा एक बेटा हुआ। मुझे लगा पांच बेटियों को जन्म देने पर जिस बदनामी से मेरी मां को गुज़रना पड़ा, उससे छुटकारा मिल पाएगा और हमारे जन्म की कहानियों की क्षतिपूर्ति हो जाएगी या वो हमारी सफलताओं से बदल दी जाएंगी। हममें से हर एक के जन्म की घोषणा मिट्टी के बर्तन को बजाकर की गई थी ताकि बेजान टन–टन दूर तक न फैले। लेकिन मेरे भाई के जन्म की घोषणा स्टील की थाली बजाकर की गई ताकि अच्छी खबर सब जगह फैल जाए।

चादरों की सलवटें दूर करते और अपने सामान को सहेजते हुए मैं खुद बिखरती गई। घर को ठीक से चलाने के लिए मैंने चाहे जो किया, जितना भी किया, वही काफी नहीं था, शाबाशी के लायक तो कभी भी नहीं। साथ ही, वो हमेशा मेरी ही ज़िम्मेदारी थी। फिर भी निर्णय प्रक्रिया में मेरी कोई भागीदारी नहीं रही। गुस्सा आने के साथ–साथ उसका अपराधबोध भी मुझे सताता रहता। मेरी समझ और ज़िंदगी से सीखा ज्ञान भी इस निरंतर संघर्ष को आसान नहीं बना रहा था।

बच्चों के लालन–पालन और पारिवारिक बंदिशों के बीच मैंने महिला समूहों को टी.वी. पर, सड़कों पर प्रदर्शन करते हुए, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा पर रोक लगाने और महिलाओं के लिए अधिकारों की मांग करते देखा। इन समूहों की निर्भीकता, निजी मुद्दों को सार्वजनिक क्षेत्र में लाना, शुरू में मुझे हैरान कर गया। शायद मुझे विमुख हो जाना चाहिए था। उसकी बजाय मैं इनकी तरफ आकर्षित हो गई। सहेली, दिल्ली का सबसे प्रारंभिक स्वायत्त महिला समूह, मेरे मोहल्ले के साथ वाले मोहल्ले में स्थित था। सन् 1983 में मैं उनके साथ एक स्वयंसेवक के रूपमें जुड़ी और यहां पर मुझे 1984 के सिक्खों के खिलाफ हुए दंगों से बचकर आने वाली महिलाओं के साथ काम करने का मौका मिला। परिणामस्वरूपअंदरुनी प्रश्नों को पूछने की लम्बी और गहरी प्रक्रिया शुरू हुई। अपने उत्तरों की खोज में 1991 में मैं महिलाओं के समूह जागोरी से तनख्वाह पाने वाली पूरा वक्ती कार्यकर्त्ता के रूपमें जुड़ी।

मेरे शुरूआती कामों में दिल्ली की एक पुनर्वास बस्ती में काम करना शामिल था। इस काम में स्थानीय संगठन और एकल महिलाओं का दस्तावेज़ीकरण भी सम्मिलित था। तकनीकी रूप से अशिक्षित समझे जाने वाली और आजीविका की नज़र से गरीब महिलाओं से मुझे हर रोज़ असंख्य बातें सीखने को मिलीं। यह समय मेरे जीवन को सबसे सशक्त बनाने वाला समय था। अपनी समस्याओं पर चर्चा करते हुए, रणनीति और हस्तक्षेपों की योजना बनाते हुए समान रूपसे घेरा बनाकर ज़मीन पर बैठने के नियमित अभ्यास ने मुझे अपने वर्ग के विशेष अधिकारों के साथ–साथ अन्य विशेष अधिकारों को जांचने की चुनौती दी।

पहली महिला जिनके बारे में मैंने लिखा, वे थीं 'भंवरी', जो अपने जीवन के 60वें साल में थीं। जैसे ही मैं उनके साथ बैठी, उन्होंने मेरी ठुड्डी अपने हाथों में ली और अपनी कामकाजी, रुखड़ी उंगलियों को मेरी बांहों और चेहरे पर फिराया। "मेरे पति ने कभी नहीं पूछा कि मैं कैसी हूं, क्या खाती–पीती और पहनती हूं, उसने मुझे ऐसे कभी प्यार नहीं किया," उनकी बातों में मुझे अपनी उत्कंठाओं की झलक मिली और उनके छूने से एक आनंद की अनुभूति हुई। एक आश्चर्य के साथ मुझे अहसास हुआ कि यह कामुक अनुभूति एक महिला के हाथों से हुई है। इससे कॉन्वेंट स्कूल में अंधेरी सीढ़ियों की एक याद ताज़ा हो आई। जबकि मैं सोचती थी कि वो याद समय के साथ खत्म हो गई है और मैं उससे आगे निकल गई हूं। उस दिन जब मैं हैरान–परेशान घर वापस आई, तो लगा कि कुछ भी नहीं बदला था।

बाद में अन्य महिलाओं के साथ मेरी बैठकों में, जिस बात को मैं आत्मसात कर चुकी थी, उसके अवशेष उस खुरदुरे स्पर्श की तरह वापिस आते रहते। उनको सुनते हुए मुझे धुंधला सा दिखाई दिया कि कैसे ढांचागत ताकतें हमारे अंतरंग संबंधों को प्रभावित करती हैं। 'पिंजरे में बंद', 'अच्छी औरत', 'बुरी औरत' – अपनी कहानियां सुनाने के लिए हम एक ही शब्द इस्तेमाल करते थे और इन्हीं शब्दों में हमारी व्यक्ति विशेष और हम सबकी अलग–अलग तरह की ज़िंदगियों में बहुत समानताएं मुझे नज़र आने लगीं। अपने को ज़िन्दा रखने के लिए जो अनिश्चित साधन थे, उनको भी अपने जीवन में बदलाव लाने के लिए दांव पर लगा देने वाली महिलाओं की रोज़ाना मौजूदगी ने मुझे भी अपना जीवन बदलने के लिए प्रेरित किया। मैंने अपने बेटे से बात करने और 16 वर्षों की शादी से बाहर निकलने का साहस बटोरा।

लेकिन जब मोड़ आया, तो लगभग अदृश्य था। वह मोड़ तब आया, जब मैंने भंवरी को दो महिलाओं के संबंध के बारे में बात करते सुना। आराम से, बिना किसी नैतिक मूल्यांकन के उन्होंने कहा कि ये दो महिलाएं अपने घर और परिवार से दूर खेतों में मिलीं। उन्हें एक–दूसरे से बहुत प्यार था। वे एक–दूसरे को देखे बिना जी नहीं सकती थीं।

महिलाओं को ताकत देने वाली इस जगह ने मुझे भी भला–चंगा कर दिया। पर फिर भी जो कहानी मैंने अभी–अभी सुनी, उसे लिखना मेरे लिए आसान नहीं था। मैंने अपने–आपको जानना बस अभी शुरू ही किया था। मैं डरी हुई थी। इस प्रॉजेक्ट के अन्त में कहीं जाकर मैं इस कहानी को शामिल कर पाई। पीछे मुड़कर देखने पर मुझे यहां कई मुद्दे नज़र आते हैं।

महिलाओं के प्रति अपने प्यार को मैंने स्वीकार कर लिया, फिर भी डर था। सिर्फ भंवरी थीं जिनके पास मैं जा सकती थी। उनके अलावा महिलाओं के समूह में भी मैं किसी को नहीं जानती थी, जिससे मैं बात कर पाती। बहुत बाद में निजी बातचीत के दौरान मुझे पता चला कि आंदोलन में हमारे जैसी बहुत–सी महिलाएं थीं। मैंने यह भी देखना शुरू किया कि कैसे आंदोलन में मुद्दों से जूझते समय वर्ग, जाति, भौतिक स्थिति जैसे कारकों को ध्यान में रखा जाता था, पर यौनिक विविधता का ज़िक्र शायद ही कभी होता था। विषमलैंगिकता ही एक सर्वव्यापी और मानक यौनिकता है – यह विश्वास न केवल हमारी खामोशी पर कायम रहता है, बल्कि हालात की समग्र दृष्टिपरक व्याख्या में भी अड़चन पैदा करता है।

आखिर में एक महिला के साथ संबंध ने मुझे मज़बूत बनाया। मैं अब अकेली नहीं थी। जैसे–जैसे हमने अपने टूटे दिलों और आपसी फर्क के साथ एक तरह का भावनात्मक लेन–देन किया, हमें महिलाओं से सहायता मिली। जिनसे हमें सहायता मिली, वो महिलाएं भी ऐसी थीं जो अपनी यौनिकता के बारे में चुप्पी साधने पर मजबूर थीं। अक्सर जिस बात की कमी महसूस होती, वह थी एक ऐसी बाहरी, ज़्यादा बड़ी, स्वीकारात्मक जगह, जिसमें बिना किसी झूठे दिखावे के हम जैसे हैं वैसे ही रह पाते।

महिला आंदोलन का एक नज़रिया[1]

लम्बे समय से महिला आंदोलन के लिए एकजुट होने का सूत्र रहा है 'व्यक्तिगत ही राजनैतिक है' और जितने सही तरीके से यह यौनिकता के क्षेत्र में लागू हुआ है और कभी कहीं नहीं हुआ। गर्भपात के अधिकार से लेकर गर्भनिरोधकों के इस्तेमाल तक के मसलों पर महिला समूहों ने यौनिकता पर नियंत्रण का अधिकार और शारीरिक निष्ठा के लिए अभियान चलाया है। महिलाओं के लिए यौनिकता की केवल एक ही मान्य अभिव्यक्ति है और वह है विषमलैंगिक (महिला और पुरुष के बीच) शादी, जो जाति और समुदाय की सख्त सीमाओं में बंधी होती है। आनंद के लिए यौन क्रिया पारंपरिक रूप से महिलाओं के लिए वर्जित ही रही है। महिलाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि पतियों को संतुष्ट करने के लिए यौनिक क्रिया में वे अपने को केवल समर्पित कर दें, बच्चे पैदा करें और वो भी बेटे। निस्संदेह रंडी/वेश्या/यौनकर्मी पैमाने के दूसरे छोर पर हैं – उनका समूचा अस्तित्व यौन के इर्दगिर्द रचा गया है। परिवार की इकाई को बनाए रखने के लिए महिलाओं की यौनिकता पर पितृसत्तात्मक नियंत्रण को कानूनों और न्यायपालिका के पूर्वाग्रहों द्वारा मज़बूत किया गया है, चाहे वह कितना ही दमनात्मक या हिंसात्मक क्यों न हो।

ऐतिहासिक रूप से अंग्रेज़ कानूनी व्यवस्था यौनिकता की उन सभी अभिव्यक्तियों के खिलाफ रही है जो प्रजनन से नहीं जुड़ी हैं। धारा 377 और सरकार की उसे रद्द करने की अनिच्छा इसी नज़रिए का सार है। गैर–प्रजनक कामुकता का अर्थ गुदा मैथुन माना गया है – हालांकि इसमें और कई तरह की यौन क्रियाएं भी शामिल हैं। भारतीय कानून प्रणाली ने न केवल इस नज़रिए को अपना लिया है, बल्कि यौनिकता के प्रति अपनी घबराहट से उभरे नए आयाम भी उसमें जोड़ दिए हैं। अपनी यौनिकता को दबाकर रखना और दूसरों की अभिव्यक्ति को गलत ठहराना, हज़ारों साल से चली आ रही इस छटपटाती मानसिकता ने एक ऐसा न्यायशास्त्र बनाया, जिसमें गैर–प्रजनक यौन का आनंद लेने को आपराधिक दर्जा दिया गया। हालांकि धारा 377 समलैंगिकता का विशेष रूप से उल्लेख नहीं करती है, पर गैर–कानूनी करार की गई 'क्रियाओं' का अर्थ यही लगाया जाता है। इस पुरातन कानून की मार सबसे अधिक समलैंगिक पुरुषों ने झेली है। उनकी यौनिक अभिरुचि के कारण पुलिस उनसे पैसे ऐंठती है और वे उत्पीड़न का शिकार बनते हैं। "जो कोई भी स्वेच्छा से किसी भी पुरुष, स्त्री या पशु के साथ प्राकृतिक व्यवस्था के विरुद्ध कामुक संभोग करता है," उसके लिए उसे अधिकतम आजीवन कारावास की सज़ा और जुर्माना हो सकता है। अगर यह कानून पूरी तरह से लागू किया जाए तो देश की वयस्क जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा प्राकृतिक व्यवस्था के विरुद्ध यौन संबंध के लिए सलाखों के पीछे होगा और जुर्माना भरने के लिए कर्ज़ ले रहा होगा!

'अप्राकृतिक' यौन

खुद कामसूत्र की ज़मीन पर यौन के बारे में बहुत कम बात की जाती है। गैर–प्रजनक कामुकता और आनंद के लिए यौन को एक पथरीली खामोशी ने घेर रखा है। लेकिन एक हलचल शुरू हुई जब मीडिया

[1] *धारा 377 को महिला आन्दोलन के तहत किस तरह उठाया जाए, इससे जुड़े कई नज़रियों में से यह एक नज़रिया है।*

में सरकारी परिवार नियोजन के व्यापक प्रचार के चलते हर बच्चा माला–डी और निरोध (जिन्हें बच्चों ने गुब्बारों की तरह फुला कर उड़ाया भी!) के गुण–दोषों की तुलना कर रहा था। यही नहीं पिछले दशक में एड्स के डर ने तो एक तरह से यौनिकता को उस खामोशी से खींच कर बाहर निकाला है।

अब यह समझ उभर रही है कि यौनिकता से जुड़े व्यवहार और स्थितियों में इतनी विविधता है कि उसे 'विषमलैंगिक' और 'समलैगिक' के बंधे बंधाए खाकों में नहीं बांटा जा सकता। लोकप्रिय पत्रिकाओं में यौनिकता पर छपने वाले अध्ययनों से यह बात सामने आ रही है कि भारतीय उतने विषमलैंगिक नहीं हैं जितना सरकार विश्वास करना चाहती है। यौनिक व्यवहारों की एक लम्बी सूची है : इसमें शामिल हैं मुख मैथुन (मुख द्वारा लिंग या योनि को उत्तेजित करना), हस्तमैथुन (हाथ द्वारा की गई यौन क्रियाएं – अकेले या किसी के साथ), अंतर–ऊरु (जांघों के बीच) संभोग और महिला–महिला के बीच वे यौन क्रियाएं जिनमें यौन अंग द्वारा दूसरे को उत्तेजित किया जाता है। यह काफी स्पष्ट है कि पुरुष व महिला के बीच प्रजनन के लिए 'मिशनरी' स्थिति (ऐसी स्थिति जब संभोग करते समय महिला व पुरुष का मुख एक–दूसरे के सामने हो और महिला पुरुष के नीचे हो) में यौन सर्वव्यापक नहीं है। लेकिन अन्य सभी 'क्रियाएं' "अप्राकृतिक" और अवैध हो जाएंगी, क्योंकि वे 'प्रजनन' के लिए नहीं हैं!!

हालांकि यौन व्यवहार के इर्दगिर्द भ्रांतियां, रूढ़ियां और कलंक अभी भी हैं, लेकिन यौनिकता और विशेषकर महिलाओं की यौनिकता के मुद्दों के बारे में थोड़ा खुलापन आने लगा है। फिर भी सामाजिक वास्तविकता और कानूनी एवं न्यायिक सोच के बीच काफी बड़ी खाई है। धारा 377 का आज की तारीख में कोई अर्थ नहीं क्योंकि अब खुद भारत सरकार नहीं मानती कि यौन सिर्फ प्रजनन के लिए है। तभी तो सालाना काफी बड़ी धनराशि जनसंख्या नियंत्रण के लिए गर्भनिरोध व जन्म दर नियंत्रण के तरीकों के प्रचार पर खर्च करती है।

पहले परखनली बच्चे (टेस्ट ट्यूब बेबी) के जन्म के साथ, 1978 से चिकित्सा तकनीक ने दिखाया है कि विषमलैंगिकता सामाजिक या प्राकृतिक रूप से अनिवार्य नहीं। अब जब यौनिक क्रियाएं प्रजनन के लिए ज़रूरी नहीं, ज़ोर इस बात पर है कि यौनिकता को स्वस्थ होना चाहिए। उसकी अभिव्यक्ति सहज होनी चाहिए और उत्पीड़न से मुक्त। 'जेण्डर' और 'सेक्स' क्या हैं – इन धारणाओं को भी चुनौती दी जा रही है। अब तक महिलावादी नज़रिए के मुताबिक भी 'जेण्डर' और 'सेक्स' दो अलग–अलग खाके रहे हैं। यह माना गया है कि 'जेण्डर' सामाजिक है और 'सेक्स' प्राकृतिक। अब यह समझा जाने लगा है कि ये कोई बंधी–बंधाई श्रेणियां नहीं हैं, बल्कि लचीली हैं। (उदाहरण के लिए ज़रूरी नहीं कि अगर कोई शारीरिक रूप से 'मर्द' है तो उसका 'जेण्डर' मर्द का होगा। हो सकता है कि वह अपने आप को 'औरत' महसूस करता हो या ऐसा भी हो सकता है कि वह 'मर्दाना' या 'औरताना' – इन दोनों अलग–अलग खाकों में बंध कर अपने आप को नहीं देखता हो।) ऐसे ट्रान्सजेंडर्ड लोग जैसे–जैसे समाज में नज़र आ रहे हैं, 'जेण्डर' और 'सेक्स' की यह नई समझ उभर रही है। आने वाले कल के लिए तैयार यात्री की तरह कानून को भी यह सच्चाई पहचान लेनी चाहिए।

महिलाओं के बीच यौन संबंध

मूलतः दो तरह की क्रियाओं को गुदा मैथुन समझा जाता था : दो पुरुषों या महिला–पुरुष के बीच तथा मानव व विपरीत लिंग के पशु के बीच यौनिक संभोग। मध्यकाल में जीवविज्ञान की सही जानकारी नहीं

होने की वजह से ऐसा माना जाता था कि पाशविकता के कारण आधा मानव और आधा जानवर जैसा बच्चा पैदा हो सकता है। गुदा मैथुन की निंदा की जाती थी क्योंकि ऐसा माना जाता था कि राक्षस चुड़ैलों के साथ इस प्रकार की क्रिया करते थे। भगवान की सन्तानों पर अतिप्राकृतिक शक्तियों का कब्ज़ा न हो जाए, इस डर से कठोरता को आत्मरक्षा के लिए ज़रूरी समझा जाता था।[1]

'प्रकृति के विरुद्ध अपराध' यह नाम दिया अंग्रेज़ विधिशास्त्री विलियम ब्लैकस्टोन (1723–80) ने। यौनिक व्यवहार में अंतर के कारण महिलाओं के बीच यौन संबंध से पहले पुरुष–पुरुष के बीच यौन संबंध कानून की नज़र में आया। आमतौर पर सार्वजनिक तथा अर्धसार्वजनिक जगहों में महिलाओं की तुलना में पुरुषों द्वारा यौन क्रिया करने की संभावना ज़्यादा होती है। इसके अलावा दो महिलाओं के बीच यौन संबंध को एक विरोधाभास के रूप में देखा जाता था। सन् 1811 में दो महिलाओं के बीच मुख मैथुन के एक मामले में स्कॉटलैण्ड में हाउस ऑफ लॉर्ड्स (देश की सरकार को चलाने वाले पुरुषों) ने निर्णय लिया कि "यहां जिस अपराध के लिए आरोप लगाया जा रहा है वैसा अपराध हो ही नहीं सकता।" सन् 1913 में अमरीका में मिसौरी सर्वोच्च न्यायालय ने दो महिलाओं के बीच मुख मैथुन के आरोप पर सज़ा सुनाने की भी इजाज़त नहीं दी, क्योंकि न्यायालय बिना लिंग के यौनिक क्रिया की कल्पना ही नहीं कर सका। कहा गया कि मुख द्वारा यौनिक संभोग पूरा नहीं किया जा सकता।

भारत में लेस्बियन और बाइसेक्स्युअल महिलाएं संगठित हो रही हैं और अपने संबंधों के लिए दृश्यता तथा सामाजिक मान्यता की मांग कर रही हैं, उत्पीड़न और हिंसा को खत्म करने की मांग कर रही हैं। विडंबना यह है कि वर्तमान में कानून की नज़र में हाशिए पर होना भी कुछ लोगों को फायदेमंद लगता है क्योंकि महिला–महिला यौन को विशेष रूप से आपराधिक नहीं कहा गया है। फिर भी लेस्बियन महिलाओं को उत्पीड़ित करने और उन्हें विषमलैंगिक शादियों के लिए मजबूर करने के लिए धारा 377 का प्रयोग किया गया है। लेस्बियन महिलाओं द्वारा आत्महत्याओं का प्रकाश में आना, उन्हें सामाजिक मान्यता दिलाने और गैर–विषमलैंगिक यौनिकताओं को अपराध नहीं ठहराए जाने की ज़रूरत को दर्शाता है।

लेस्बियन और बाइसेक्स्युअल महिलाओं ने न केवल समाज की मुख्यधारा के सामने, बल्कि खुद महिला आंदोलन के अंदर भी कठिन संघर्ष किया है। अभी हाल के समय में एल.जी.बी.टी. (लेस्बियन, गे, बाइसेक्स्युअल और ट्रान्सजेंडर्ड) समूहों द्वारा बहुत मुश्किल से इनके मुद्दों को महिला आंदोलन के एजेंडे पर लाया गया है। महिला समूहों और लोकतांत्रिक अधिकार समूहों को अपने पूर्वाग्रहों से जूझने के लिए बाध्य होना पड़ा है। पहले जो आधार यों ही मान लिए जाते थे, उनको चुनौती मिली है। सहभागिताएं बन रही हैं और आपसी बातचीत ने एक सामूहिक समझ विकसित होने तथा संघर्ष को आगे बढ़ाने में भूमिका निभाई है।

स्वीकृति का मुद्दा

भारत में महिला आंदोलन ने यौन के हिंसात्मक पहलू पर बहुत सघन रूप से काम किया है। करीब 25 वर्ष पहले बलात्कार से संबंधित कानून में संशोधन के लिए अभियान चलाया। हमने इस समझ को स्पष्ट किया है कि पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनाओं में पुरुषों द्वारा महिलाओं पर सत्ता के इस्तेमाल के कारण

[1] *पेन्टर, जॉर्ज : "द सेन्सिबिलिटीज़ ऑफ आर फोरफादर्स – द हिस्ट्री ऑफ सॉडोमी लॉज़ इन द युनाइटिड स्टेट्स" स्रोत : http//www.sodomylaws.org*

यौनिक हिंसा होती है (जो जाति, वर्ग और धार्मिक विभाजन के द्वारा आगे और भी वर्गीकृत की जाती है)। बलात्कार शब्द की परिभाषा भी महिला समूहों की एक सामूहिक चिंता का विषय रही है। हमने लगातार यौनिक अत्याचार की व्यापक परिभाषा के लिए आग्रह किया है, जो कि उसी ठेठ लिंग–योनि भेदन को अंतिम अपराध व उल्लंघन नहीं मानती। यौनिक अत्याचार के हर मामले में इस धारणा को विस्तृत करने का प्रयास किया गया है : जैसे बिना स्वीकृति के योनि, गुदा या मुख में लिंग, उंगली या अन्य किसी वस्तु द्वारा भेदन। यहां अत्याचार को 'अच्छे' और 'बुरे' के दायरे से निकालकर स्वीकृति के अभाव और शारीरिक निष्ठा के उल्लंघन के रूप में परिभाषित किया गया है।

यहां यह कहना उचित होगा कि शादी के तहत बलात्कार को अपराध करार देने में सरकार उतनी ही अनिच्छुक है, क्योंकि यह पति–पत्नी के बीच के 'पवित्र' संबंध में दखलंदाज़ी होगी। शादी होने से पति को पत्नी के साथ यौन संबंध स्थापित करने का अधिकार मिल जाता है और मान लिया जाता है कि पत्नी तो हमेशा राज़ी ही होती है। इस घिनौनी धारणा को बार–बार चुनौती दी गई है। शादी के तहत बलात्कार को बलात्कार कानून के दायरे के अंदर लाने की कोशिशों के बावजूद कानून अब तक इस तरह के बलात्कार को अपराध करार देने के लिए तैयार नहीं है। लेकिन कानून को अपनी इच्छा से यौनिक क्रियाओं में भाग लेने वाले वयस्कों की निजी ज़िंदगी पर आक्रमण करने में कोई तकलीफ नहीं है। कोई भी कानून जो परिवार या विवाह की संस्था के लिए खतरा हो सकता है, उससे जुड़ा संघर्ष कठिन है। धारा 377 को रद्द करने की मांग भी इसी श्रेणी में आती है, क्योंकि वह 'सही' और 'गलत' की धारणाओं, परिवार और विषमलैंगिक विवाह को चुनौती देती है।

धारा 377 को बनाए रखने का एक तर्क है कि यह बच्चों को यौनिक अत्याचार से सुरक्षा देता है। एक दमनकारी कानून जो यौनिक अल्पसंख्यकों पर अत्याचार करता है, उसे बनाए रखने के लिए यह तर्क देना पर्याप्त नहीं है। बच्चों के लिए सुरक्षा यौनिक अत्याचारों से संबंधित कानूनों में संशोधन करके प्राप्त की जा सकती है और ऐसा किया जाना चाहिए। हालांकि यह सही है कि धारा 377 को पुरुष और महिला के बीच ज़बरदस्ती गुदा या मुख मैथुन के मामलों में प्रयोग किया गया है (वैसे इस तरह का उपयोग बहुत कम है), फिर भी इस धारा को बने रहने देने के लिए यह तर्क काफी नहीं है। यौनिक अत्याचार कानून को दोबारा बनाने से ज़बरदस्ती करवाई गई यौनिक क्रियाओं (चाहे जो भी हों) को भी कानून के दायरे में लाया जा सकता है। यहां मुद्दा ज़बरदस्ती और स्वीकृति नहीं होने का है, यौनिक क्रिया के स्वरूप का नहीं। सिर्फ इसलिए कि सरकार ने लम्बे समय से वयस्कों के बीच सहमति से की गई यौन क्रियाओं में दखलंदाज़ी की है, उसे ऐसा करते रहने देने की अनुमति के लिए कोई पर्याप्त संवैधानिक तर्क नहीं है।

हिजड़ों और कोथियों के अधिकारों का हनन[1]

सन् 2002 में चार कोथी यौन कर्मी – **सीता, शीला, विमला और मालती** पुलिस द्वारा सड़क से उठा लिए गए और बैंगलोर में संपंगीरामनगरा पुलिस थाने में ले जाए गए। पुलिस थाने में उन्हें उत्पीड़ित किया गया। बुरी तरह से पीटे जाने की वजह से उनके हाथों, बांहों और पैरों पर चोटें आईं। बाद मैं उन्हें बिना कोई आरोप लगाए, इस चेतावनी के साथ छोड़ दिया गया कि वे दोबारा बैंगलोर की सड़कों पर नज़र नहीं आने चाहिए।

इतनी शारीरिक पीड़ा एवं मानसिक व्यथा और खुलेआम सामने आने में असुरक्षित महसूस करने के बावजूद वे इस शिकायत के साथ संगमा नाम की एक यौनिक अल्पसंख्यक अधिकार पर काम करने वाली संस्था के पास गए। सड़कों को हिजड़ों और कोथी यौनकर्मियों से 'मुक्त' करने के कोशिश में पुलिस उन्हें नियमित रूप से धमकाती है, तब भी जब वे ग्राहकों को लुभाने का प्रयास तक नहीं कर रहे होते जो कि अनैतिक व्यापार रोकथाम अधिनियम (1986) की धारा 8(बी) के अंतर्गत एक अपराध है।

नासिर, एक 27 वर्षीय कोथी बताती है : "संपंगीरामनगरा पुलिस ने मेरा गलत नाम (सलीम) और पिता का नाम अब्दुल लिखाकर मेरे विरुद्ध केस दर्ज किया और मुझे हवालात में बंद कर दिया। जब मैंने इसका विरोध किया, उन्होंने मुझसे कहा, "तुम्हारे साथ तो हम कुछ कर नहीं सकते, तो चुपचाप पड़े रहो।" मुझे वहां रात के 11 बजे तक रहना पड़ा। लगभग एक घंटे बाद तीन पुलिस वाले आए, मुझसे पूछा कि मेरा लिंग है या नहीं और कहा चलो हमें दिखाओ।" जब मैंने उनकी बात नहीं सुनी, तो मेरे कपड़े उतरवाने के लिए उन्होंने मुझे मारना शुरू कर दिया। एक पुलिसवाले ने यह कहते हुए कि तुम *खोजा* (हिजड़ा/कोथी के लिए एक अपमानजनक शब्द) हो, मेरे मलद्वार में लकड़ी डाली। उसके बाद एक पुलिसवाले ने मेरे मुंह में और दूसरे ने मलद्वार में ज़बरदस्ती लिंग डाल दिया। एक एक करके बाकियों ने भी ऐसा ही किया, जब तक कि वे सब बाहर नहीं आ गए और फिर उन्होंने मुझे छोड़ा। सुबह करीब 5 बजे मैंने कहा, "मुझे घर वापस जाना है, मेरा भाई इंतज़ार कर रहा होगा और मेरे लिए परेशान हो रहा होगा।" तब उन्होंने कहा, "जो पुलिस इन्सपेक्टर और पुलिस वाला तुम्हें यहां लाया है उनको आ जाने दो फिर हम तुम्हें छोड़ देंगे।" 9 बजे मेरे हाथ–पैरों की उंगलियों के निशान लिए गए। मैंने उनसे पूछा कि मेरी उंगलियों के निशान क्यों लिए जा रहे हैं, मैं कोई हत्यारा नहीं हूं। वे मेरे ऊपर चिल्लाए, "जैसा कहते हैं वैसा करो।" दोपहर को 1.30 बजे मुझे बैंगलोर शहर पुलिस कमिश्नर के कार्यालय में ले जाया गया जहां मेरी कुछ तस्वीरें खींची गईं। इसके बाद मुझे वापस पुलिस थाने लाया गया और कुछ कागज़ों पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया, जो मैंने कर दिए। लगभग 2 बजे मुझे मैजिस्ट्रेट के घर ले जाया गया।

[1] *स्रोत : पी.यू.सी.एल.–के रिपोर्ट, 2002*

वहां हमें आधा घंटा इंतज़ार करना पड़ा क्योंकि वो शादी में गए हुए थे। फिर पुलिस ने मुझसे कहा मैजिस्ट्रेट के सामने हम जो पूछेंगे उसे स्वीकार कर लेना और कुछ मत बोलना वरना हम तुम्हारी पिटाई करेंगे। लेकिन जब वो आए मैंने उन्हें बताया कि मैंने कोई गलती नहीं की है, मैं निर्दोष थी। लेकिन मैजिस्ट्रेट ने भी मेरी नहीं सुनी, उन्होंने मुझे चले जाने को कहा। उसके बाद मुझे सेंट्रल जेल में ले जाया गया। जहां पुलिस ने मेरे कपड़ों की तलाशी ली और मेरी बेल्ट, घर की चाबियां और थाने में पुलिस वालों ने जो थोड़े बहुत पैसे छोड़े थे, वो भी ले लिए।

गीतांजलि, एक 23 वर्षीय हिजड़े ने बताया : "वो मुझे क्यूबन पार्क पुलिस थाने ले गए जहां पुलिस ने मुझसे कुछ नहीं पूछा, बस मेरी पिटाई की। जब मैंने समझाने की कोशिश की, किसी भी पुलिस वाले ने घटना के बारे में मेरा ब्यौरा नहीं सुना। आठ पुलिसवालों ने मेरी पिटाई की और मुझे हवालात में बंद कर दिया। मेरा लिंग है या नहीं, यह जानने के लिए वे इतने उत्सुक थे कि उन्होंने मेरे कपड़े उतार दिए। उन्होंने मुझे रस्सियों से बांधकर लटका दिया और मार–मार कर नीला कर दिया।"

धारा 377 और बाल यौन उत्पीड़न

धारा 377 के विरुद्ध दिल्ली उच्च न्यायालय में दायर याचिका के जवाब में सरकार ने स्पष्ट किया है कि बाल यौन उत्पीड़न का अपराध करने वालों पर मुकदमा चलाने के लिए इस कानून का होना बेहद ज़रूरी है। एक स्तर पर यह जवाब समझना ही मुश्किल है। निश्चित रूप से सरकार को मालूम होगा कि यह याचिका धारा 377 को रद्द करने के लिए नहीं है, केवल उसके दायरे को कम करने के लिए है। इसका अर्थ है कि याचिका में मूलरूप से केवल वयस्क, निजी, सहमति–प्राप्त समलैंगिक यौन क्रियाओं को धारा 377 के सीमा क्षेत्र से हटाए जाने का आग्रह है। बाकी की धारा अपरिवर्तित ही रहती है, अतः गैर सहमति–प्राप्त यौनिक क्रियाओं पर वो फिर भी लागू होगी और इसलिए बाल यौन उत्पीड़न के मामलों में इस्तेमाल की जा सकती है।

यह तर्क आसानी से दिया जा सकता है कि यह सरकार की कोई भूल या चूक नहीं है, बल्कि जानबूझ कर मुद्दों को उलझाने का प्रयास है। इस प्रयास का एक भाग बाल अधिकारों को समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों के अधिकारों के विरुद्ध खड़ा करना है। वयस्क सहमति–प्राप्त यौनिक क्रियाओं (जिनमें समलैंगिक क्रिया भी शामिल हैं) को गैर–आपराधिक करार देने की मांग का सामना करने के लिए बच्चे की असुरक्षा का हौआ पैदा करने से अच्छा और क्या तरीका हो सकता है। इस बात के बहुत कम प्रमाण हैं कि सरकार को वाकई बच्चों के लिए न्याय की कोई चिंता है। बच्चों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र (यू.एन.) की समिति को दी गई पहली सामयिक रिपोर्ट में सरकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि बाल यौन उत्पीड़न से निपटने के लिए एक अलग कानून की आवश्यकता है। लेकिन सरकार की कार्यवाही उसके द्वारा बताए गए इरादों से मेल नहीं खाती है। समूचे देश में बाल अधिकारों, महिलाओं के अधिकारों और यौनिक अधिकारों पर काम करने वाले समूहों और यहां तक कि राष्ट्रीय महिला आयोग के द्वारा मांग करने के बावजूद, सरकार ने बाल यौन उत्पीड़न को विशेष तौर पर संबोधित करने वाले कानून की मांग को अनदेखा किया है। गैर सरकारी संगठनों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि धारा 377 समेत वर्तमान कानून बाल यौन उत्पीड़न से निपटने के लिए एकदम ही अपर्याप्त है। मीडिया और इन सभी लोगों ने अपने कार्य के माध्यम से बाल यौन उत्पीड़न पर चुप्पी तोड़ने में योगदान दिया है। दूसरी ओर सरकार एक बार फिर न्याय के सिद्धांतों को प्रतिष्ठित करने वाले कानून बनाने की बजाय नागरिक समाज द्वारा न्याय की तलाश में बाधा उत्पन्न कर रही है।

बाल यौन उत्पीड़न और कानून के लिहाज़ से वर्तमान स्थिति ऐसी है कि लड़कियों के साथ यौन उत्पीड़न का मुकदमा चलाने के लिए धारा 375 (आई.पी.सी. की धारा जो बलात्कार से संबंधित है), धारा 354 (महिला की मर्यादा का उल्लंघन) या धारा 377 इस्तेमाल की जाती है। लड़कों के साथ यौन उत्पीड़न के मामले में केवल धारा 377 का ही इस्तेमाल किया जा सकता है। जैसा कि बाल यौन उत्पीड़न को संबोधित करने के लिए कानून की मांग करने वाले समूहों ने बार–बार इंगित किया है, बलात्कार कानून एकदम पर्याप्त नहीं है। धारा 375 केवल लिंग द्वारा योनि में प्रवेश को ही अपराध मानती है। यह सर्वज्ञात है कि बाल यौन उत्पीड़न अधिकतर इस प्रकार नहीं होता है। बाल यौन उत्पीड़न के

प्रकारों में जननांगों के प्रदर्शन और स्पर्श से लेकर भेदन के सभी रूप (जिसमें लिंग–गुदा, लिंग–मुख, वस्तु–योनि और उँगली–योनि शामिल हैं) हो सकते हैं। बाल यौन उत्पीड़न जिस तरह का अपराध है, धारा 354 (महिला की मर्यादा का उल्लंघन) तो उसकी गंभीरता को समझने की शुरूआत भी नहीं करती। धारा 375 की तरह यह धारा भी केवल लड़कियों के साथ हुए उत्पीड़न के मामले में ही इस्तेमाल की जा सकती है। धारा 377 अन्य कई कारणों से भी अपर्याप्त है। शुरूआत इस तथ्य से की जा सकती है कि इस कानून का निर्माण बाल यौन उत्पीड़न को ध्यान में रखकर नहीं किया गया है। जिन सब रूपों में उत्पीड़न हो सकता है, उनमें से अधिकतर के लिए यह पर्याप्त नहीं है।

ऊपर लिखी धाराओं में से कोई भी धारा कानूनी भाषा में यह परिभाषित नहीं करती कि बाल यौन उत्पीड़न में क्या शामिल है। जांच और मुकदमे की प्रक्रियाएं बच्चे के हितों के लिए बेहद हानिकारक हैं क्योंकि न ही वे कारगर हैं और न ही बाल यौन उत्पीड़न से पीड़ित बच्चों की ज़रूरतों के प्रति संवेदनशील हैं। बच्चे को बार–बार गवाही देनी पड़ती है और वो भी अक्सर यौन उत्पीड़क के सामने, फिर भी दोषसिद्धि की संभावनाएं न के बराबर हैं। यौनिक उल्लंघनों का अनुभव और उनसे जुड़े सत्ता के आयाम बच्चों, महिलाओं और समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों के लिए अलग–अलग होते हैं। इसलिए उनके लिए कानून भी अलग होने चाहिए। जांच और मुकदमे की प्रक्रियाओं के साथ–साथ कानून में निहित समझ और नज़रिए को इन विशेषताओं पर आधारित होना चाहिए। सरकार द्वारा भारतीय कानून की उसी धारा को बाल यौन उत्पीड़न के मुकदमों के लिए अनिवार्य बनाना, जिसका प्रयोग सरकार समलैंगिक क्रियाओं को आपराधिक करार देने के लिए भी करती है, इस झूठी धारणा को और मज़बूत करता है कि बाल यौन उत्पीड़न समलैंगिकता के साथ जुड़ा हुआ है। यह बात साफ है कि सरकार को पुरुष–पुरुष यौनिक उत्पीड़न और वयस्क समलैंगिकता के बीच के अंतर को समझने की बहुत आवश्यकता है। उदाहरण के लिए पुरुषों द्वारा महिलाओं के बलात्कार की व्यापकता, राज्य को विषमलैंगिकता पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित नहीं करती। बाल यौन उत्पीड़न किसी भी विषमलैंगिक या समलैंगिक पुरुष के द्वारा किया जा सकता है। दोनों ही मामलों में ऐसा करने के लिए प्रेरक होती है पीड़ित पर सत्ता स्थापित करने की इच्छा।

धारा 377 के इस्तेमाल को जारी रखने के कारण जो भी हों, स्पष्टतः बाल यौन उत्पीड़न के मामलों में कानूनी क्षतिपूर्ति का जवाब यह नहीं है। यह बहुत ज़रूरी है कि इस धारा को रद्द किया जाए और विशेष तौर पर बाल यौन उत्पीड़न को संबोधित करने के लिए अलग कानून बनाया जाए। और यह कानून उन लोगों के नज़रिए और समझ के आधार पर बनाया जाए, जो इन मुद्दों के साथ जुड़े हुए हैं। बच्चों के अनुकूल न्यायिक कार्यप्रणाली बनाने के लिए चाहिए कि बाल यौन उत्पीड़न का कानून उचित दण्डों को परिभाषित करे, कानून की विषयवस्तु और प्रक्रियाओं दोनों को संबोधित करे और लिंग, आयु एवं यौनिक अपराध को ध्यान में रखते हुए विशेष प्रावधानों को विकसित करे। नये कानून के लिए आवश्यक है कि वह पीड़ित को सहयोग व सहायता, पुनर्वास तथा विविध कानूनी उपायों के पहलुओं को देखे।

जिनके अधिकारों की सुरक्षा करना और बढ़ावा देना सरकार का काम है, उन सभी के अधिकारों को रौंदते हुए सरकार धारा 377 को न्याय प्राप्त करने के रास्ते के रूप में प्रस्तुत कर रही है। इसकी बजाय

बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए सरकार ने जो चिंताएं जतायी हैं, उनको सिद्ध करने के लिए सरकार को नया कानून बनाने के लिए प्रतिबद्ध होना पड़ेगा, ऐसा कानून जो कि बाल यौन उत्पीड़न को समग्र रूप से संबोधित करे।

बाल यौन उत्पीड़न को व्यापक सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भों में स्थापित करने की भी आवश्यकता है। यदि यौनिकता एक वर्जित विषय बना रहेगा और साथ ही यौनिकता की कुछ अभिव्यक्तियों को भयानक ठहराया जाता रहेगा, तो बच्चे को अपने आपको उत्पीड़न से बचा पाना मुश्किल हो जाएगा। सरकार कानून जैसे अनेक तरीकों से यौनिकता को बेहद उपदेशात्मक, दोषात्मक और निन्दात्मक मनोवृत्तियों में जकड़ रही है। हमें एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए, जिसमें बच्चों में सही और गलत के बीच भेद करने की क्षमता हो; जिसमें कुछ भी गलत होने पर उसे बताने में बच्चे को झिझक न हो; जिसमें वे अपने आपको सुरक्षित महसूस करें; जिसमें दुर्व्यवहार होने पर प्रभावशाली कार्यवाही हो सके। इनमें से कुछ भी कर पाने में धारा 377 असमर्थ है।

साक्ष्य : पुलिस द्वारा उत्पीड़न

बंगलोर में 22 अगस्त, 2000 को एक ही जगह से 10 लोगों को उठाया गया और विधान सौदा पुलिस थाने ले जाया गया। वहां उनके साथ गाली–गलौज की गई, कुछ को पीटा गया, उनके सारे पैसे ले लिए गए और उनके पते लेकर इस धमकी के साथ छोड़ दिया गया कि उनके घरवालों को खबर की जाएगी, जिससे उनकी बदनामी होगी।

जब संयुक्त पुलिस अधीक्षक डॉ अजय कुमार सिंह से पूछा गया कि समलैंगिक लोगों के अधिकारों के बारे में पुलिस का क्या दृष्टिकोण है, उन्होंने कहा : "भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 के अंतर्गत समलैंगिकता एक अपराध है और किसी भी अपराध को होने से रोकना पुलिस का कर्त्तव्य है। यदि कोई पुलिस वाला ड्यूटी के समय किसी प्रकार के अपराध को होने से रोकता है, तो वह अपना काम ही कर रहा है। उत्पीड़न या अत्याचार का प्रश्न ही कहां है ? ये मानव अधिकार के उल्लंघन के मामले नहीं हैं क्योंकि ये समूह कानूनी तौर पर मान्यता प्राप्त नहीं हैं। उन्हें भारतीय दण्ड संहिता अधिनियम को रद्द करने की मांग करने दो, जो समलैंगिकता पर प्रतिबंध लगाता है।"

धन ऐंठने के बारे में श्री हेगड़े ने स्वीकार किया कि सारे पुलिस वाले 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र' नहीं हैं और संभव है कि उनमें से कुछ समलैंगिकों से धन ऐंठते होंगे। लेकिन समस्या यह है कि समलैंगिक लोग भी सामाजिक कलंक के डर से आगे आकर शिकायत दर्ज नहीं करते। समलैंगिक व्यवहार के बारे में श्री हेगड़े काफी स्पष्ट थे कि यह जानवरों जैसा व्यवहार है।

धारा 377 और मानव अधिकारों का उल्लंघन

दिल्ली उच्च न्यायालय में वयस्कों के बीच सहमति से बनाए गए यौन संबंध को गैर–आपराधिक घोषित करने के लिए नाज़ फाउंडेशन, इंडिया द्वारा दायर याचिका के जवाब में भारत सरकार ने कहा है कि धारा 377 भारतीय दण्ड संहिता को बदला नहीं जा सकता, क्योंकि अधिकतर भारतीय समाज समलैंगिकता को अनुचित समझता है। इस स्पष्टीकरण में सरकार यह पहचानने में असफल रही कि बहुसंख्यक जनता की लोकप्रिय भावना जिसका वो दावा करती है, का लिहाज़ किए बिना इस देश के कानून का काम है सभी नागरिकों के मानव अधिकारों को सुरक्षित रखना व उन्हें बल देना। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के तौर से बात करना वैसे ही कठिन है, खासकर यह ध्यान में रखते हुए कि 'अप्राकृतिक' समझी जानी वाली यौन क्रियाओं में मुख व गुदा मैथुन शामिल हैं, चाहे ये क्रियाएं पुरुष–पुरुष, महिला–महिला या महिला–पुरुष के बीच ही क्यों न हो रही हों।

ऐसे मामलों में भी जहां राज्य स्वयं प्रत्यक्ष रूप से उत्पीड़न नहीं करता, धारा 377 जैसे कानून का विद्यमान होना ही संविधान के तीसरे भाग द्वारा सुनिश्चित बहुत से मौलिक अधिकारों का अनादर करता है। इनमें शामिल हैं – जीवन तथा स्वतंत्रता का अधिकार जैसा कि अनुच्छेद 21 में दिया गया है (इसके अंतर्गत स्वास्थ्य तथा एकांतता का अधिकार भी आता है), अनुच्छेद 14 के तहत दिया गया समानता का अधिकार और अनुच्छेद 19 के अंतर्गत बोलने, आने–जाने, इकट्ठा होने, व्यवसाय या व्यापार करने तथा रहने के अधिकार शामिल हैं। जैसा कि इस पूरे दस्तावेज़ में साक्ष्यों से पता चलता है – ज़बरदस्ती 'ठीक करने' के लिए अपनाई गई चिकित्सा, नौकरी या घर छिन जाने अथवा स्वतंत्र रूप से बोलने या इकट्ठा होने की असमर्थता की कहानियों के माध्यम से – धारा 377 एक ऐसा कानून है जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है। जैसा कि संविधान में कहा गया है ऐसे कानूनों को असंवैधानिक घोषित कर देना चाहिए।

धारा 377 अन्याय की संस्कृति बनाए रखने में भी योगदान देती है। भेदभावपूर्ण सामाजिक मनोवृत्तियों को 'कानूनी' करार देकर यह धारा उन सामाजिक नज़रियों को मज़बूत बनाती है जो चुपचाप, चतुराई से हम सबको अपनी लपेट में लेती हैं। धारा 377 जिन मूल्यों को बढ़ावा देती है, वे यौनिकता के इर्दगिर्द शर्म, गोपनीयता और अपराधबोध पैदा करना चाहते हैं। ये वे हथियार हैं जो पितृसत्ता के लिए बहुत फायदेमंद साबित हुए हैं क्योंकि इनके द्वारा यह सुनिश्चित हुआ है कि महिलाएं अपना चुनाव न कर सकें। धारा 377 नागरिकों को उन अधिकारों, जिन्हें सकारात्मक रूप से यौनिक अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है, का प्रयोग करने की स्वीकृति नहीं देती। किस तरह की यौनिकता को हम 'सहज', 'साधारण' और 'मान्य' मानेंगे – यह तय करने के मापदण्ड गढ़ती है धारा 377। लेकिन जहां यह कानून सभी यौनिकताओं के लिए मापदण्डों का निर्माण करने में सफल रहा है, वहीं इसने समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों व समुदायों के लिए खास तरह की परेशानियां खड़ी की हैं।

यौनिक अल्पसंख्यकों के मानव अधिकारों का उल्लंघन कैसे किया जाता है, यह देखने के लिए हमें यह जानना ज़रूरी है कि राज्य के साथ–साथ उल्लंघन करने वालों में शामिल हैं कई तरह के

गैर–राजकीय दावेदार जैसे परिवार, मीडिया और चिकित्सक। राज्य द्वारा किए जाने वाले भेदभाव और सामाजिक भेदभाव में स्पष्ट रूप से ऐसा संबंध है जो एक दूसरे के द्वारा किए गए भेदभाव को बढ़ावा देता है। उचित सचेतनता (due diligence) का सिद्धांत भारत सरकार द्वारा केवल कथनी में दिखता है, करनी में नहीं। यह मांग करता है कि राज्य गैर–राजकीय दावेदारों के द्वारा किए जाने वाले उल्लंघनों की रोकथाम करे, उनकी जांच करे, मुकदमा चलाए और क्षतिपूर्ति करे। लेकिन वास्तविकता यह है कि निजी तौर पर नागरिकों द्वारा किए जाने वाले उल्लंघनों में राज्य की भी भागीदारी रहती है। समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों व समुदायों को मानव अधिकार उल्लंघन से सुरक्षा प्रदान करने में राज्य की अनिच्छा साफ नज़र आती है। धारा 377 जैसे कानून इस गैर–कानूनी और अन्यायपूर्ण व्यवस्था को केवल एक औपचारिक रूप देते हैं।

जो विषमलैंगिक ढांचे के अनुसार नहीं चलते, उनकी स्थिति का काफी दस्तावेज़ीकरण हो रहा है। बहुत सी रिपोर्टें, जिनमें पीपुल्स यूनियन ऑफ सिविल लिबर्टीज़, कर्नाटक (पी. यू.सी.एल.के.) द्वारा प्रकाशित रिपोर्टें भी शामिल हैं, यह दिखाती हैं कि गे, लेस्बियन, हिजड़ा, ट्रान्सजेंडर्ड और बाइसेक्स्युअल लोगों की मानव प्रतिष्ठा का बार–बार किस प्रकार उल्लंघन किया जाता है। उल्लंघनों का क्षेत्र बहुत व्यापक है – पुलिसवालों द्वारा हिजड़ों के बार–बार बलात्कार से लेकर एक समलैंगिक छात्र की व्यथा तक जिसके माता–पिता ने उसे बेघर कर दिया और उस व्यक्ति की यंत्रणा तक जिसे समलैंगिकता का 'इलाज' करने के लिए दर्दनाक चिकित्सा पद्धति से गुज़रने के लिए मजबूर किया जाता है। पुलिस द्वारा समलैंगिक पुरुषों को लगातार तंग किया जाना और बड़ी संख्या में उन दोनों महिलाओं द्वारा आत्महत्या जो अपना जीवन साथ–साथ गुज़ारना चाहती थीं – ऐसे किस्से डर, उत्पीड़न और हिंसा की एक दुखभरी तस्वीर पेश करते हैं। भारत में यौनिक अल्पसंख्यक इसी माहौल में अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

धारा 377 मानव अधिकार समझौतों का उल्लंघन करती है

- ***मानव अधिकारों पर विश्वव्यापी घोषणा –*** 'कोई भी व्यक्ति यंत्रणा या क्रूर अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या फिर दण्ड का विषय नहीं होना चाहिए' (अनुच्छेद 5)।
- ***संयुक्त राष्ट्र की मानव अधिकार समिति*** ने एक मामले में नोट किया कि आई.सी.सी.पी.आर. (इंटरनेशनल कॉविनेन्ट ऑन सिविल एण्ड पॉलिटिकल राइट्स – नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय शपथपत्र) की गैर–भेदभाव वाली धारा में किए गए 'यौन' के उल्लेख में 'यौनिक अभिरुचि' को भी शामिल किया जाना चाहिए।
- ***संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार आयोग*** ने सब राज्यों से अपील की है कि वे न केवल समलैंगिकता को आपराधिक मानने वाले कानूनों को रद्द करें, बल्कि अपने संविधानों या अन्य मौलिक कानूनों में यौनिक अभिरुचि पर आधारित भेदभाव के निषेध को प्रतिष्ठापित करें।
- ***बीजिंग पी.एफ.ए. –*** महिलाओं के मानव अधिकारों में उनकी यौनिकता से संबंधित बातों में ज़िम्मेदारी व स्वतंत्रता से निर्णय लेने और नियंत्रण का अधिकार शामिल है। इनमें बिना ज़बरदस्ती, बिना भेदभाव और बिना हिंसा के यौनिक और प्रजनन स्वास्थ्य भी शामिल हैं।

जिन विशेष उल्लंघनों का सामना गे, लेस्बियन, हिजड़ा, ट्रान्सजेंडर्ड और बाइसेक्स्युअल लोग करते हैं, उन्हें मुद्दे के रूप में उठाने की आवश्यकता को अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार समुदाय के अधिवक्ताओं ने पहचाना है। इस महसूस की गई ज़रूरत को प्रतिज्ञापत्रों और घोषणाओं द्वारा समर्थन मिला है। सन् 1991 में एमनेस्टी इंटरनेशनल ने उन लोगों के अधिकारों की सहायता के लिए एक नीति बनाई, जिन्हें (एकांत में) समलैंगिक क्रियाओं में भाग लेने के कारण कैद में डाला गया था। 'टूनन बनाम तस्मानिया राज्य' के मामले पर निर्णय के बाद यौनिक अल्पसंख्यक अधिकारों के बारे में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चिन्ताओं ने ज़ोर पकड़ा। इस निर्णय के मुताबिक तस्मानिया का वह कानून जो गुदा मैथुन को गैर–कानूनी ठहराता है, (काफी हद तक भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 के समान) तस्मानिया द्वारा हस्ताक्षरित अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार समझौते के अंतर्गत समान सुरक्षा और एकान्त से जुड़े अधिकारों का उल्लंघन करता है। दक्षिण अफ्रीका में भी हाल ही में संवैधानिक न्यायालय ने गुदा मैथुन विरोधी कानून को असंवैधानिक घोषित किया है, क्योंकि यह समलैंगिक लोगों की गरिमा और एकान्त से जुड़े अधिकारों का उल्लंघन करता है। अन्य महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों में दक्षिण अफ्रीकी संविधान का एक संशोधन शामिल है जो यौनिक अभिरुचि के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है। इसके अलावा यूरोपियन यूनियन की शर्त भी है जिसके तहत यूरोपियन यूनियन के सभी सदस्य हर उस कानून को हटाएं जो गे, लेस्बियन और बाइसेक्स्युअल लोगों के खिलाफ भेदभाव करता है।

नागरिक समाज की ओर नज़र घुमाएं तो अपने आप को उदार व अति प्रगतिशील कहने वाले लोगों में भी यौनिकता को एक तुच्छ, हल्का या बुर्जुआ मुद्दा कह कर उस पर ध्यान नहीं दिया जाता। ऐसी परिस्थिति में समलैंगिकता को कुल मिलाकर इस तरह देखा जाता है जैसे वह कुछ 'असामान्य' हो। ज़्यादा से ज़्यादा उसे एक व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मुद्दे के रूप में देखा जाता है, मानव अधिकार के रूप में नहीं। सामान्यतः यौनिक अंतर पर आधारित उत्पीड़न के मुकाबले गरीबी, वर्ग और जाति से जुड़े उत्पीड़न के मुद्दों को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। लेकिन यह इस सत्य को अनदेखा कर देता है कि यौनिकता का सभी सामाजिक उत्पीड़नों (जैसे कि पितृसत्ता, पूंजीवाद, जाति प्रथा और धार्मिक रूढ़िवादिता) से एक गहरा जुड़ाव है। विडम्बना यह है कि सभी अधिकार मूल रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और उन्हें अलग–थलग नहीं किया जा सकता – इन सिद्धांतों का समर्थन करने वाले मानव अधिकार कार्यकर्ता यौनिक अधिकारों को अलग से अल्पसंख्यक अधिकारों का दर्जा देकर छोटा बना देते हैं। हमें यह पहचानने में गलती नहीं करनी चाहिए कि यौनिक अधिकारों की मांग कोई अलग मांग नहीं है – और वास्तव में यह आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक न्याय के व्यापक मानव अधिकार संघर्ष का एक अटूट हिस्सा है।

धारा 377 के विरुद्ध ऐमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया का बयान

समलैंगिक अधिकार मानव अधिकार हैं!

यौनिक अभिरुचि केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मुद्दा नहीं है। यह एक बुनियादी मानव अधिकार है क्योंकि किसी को ज़बरदस्ती उसकी यौनिक अभिरुचि बदलने या उसे अस्वीकार करने या उसके ऐसा न करने पर दण्ड देने वाले कानून तथा प्रथाएं मानव व्यक्तित्व के एक गहरे पहलू पर चोट पहुंचाती हैं। ऐसे कानून और प्रथाएं समलैंगिक लोगों की शारीरिक व मानसिक प्रतिष्ठा को नकारते हुए घोर मनोवैज्ञानिक और शारीरिक हिंसा करते हैं क्योंकि इनसे व्यक्ति की बुनियादी गरिमा तथा हैसियत को चोट पहुंचती हैं। इसलिए यौनिक पहचान या अभिरुचि और सहमति–प्राप्त वयस्क समलैंगिक यौन संबंधों को आपराधिक करार देने को मानव अधिकारों का उल्लंघन माना जाता है।

यौनिक अभिरुचि और अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार कानून

इस प्रश्न पर अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार स्पष्ट और निश्चित है। मानव अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र समिति, एक ऐसी समिति है जो राज्यों द्वारा आई.सी.सी.पी.आर. (इंटरनेशनल कॉविनेन्ट ऑन सिविल एण्ड पॉलिटिकल राइट्स – नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय शपथपत्र) के पालन को मॉनिटर करती है। भारत ने इस अन्तर्राष्ट्रीय समझौते का पालन 1979 में शुरू किया था। 1994 में इस समझौते से जुड़ी समिति ने फैसला किया कि जो कानून समलैंगिक व्यवहार को आपराधिक ठहराते हैं, वे सभी भेदभाव से मुक्ति और एकांतता के मानव अधिकार का उल्लंघन करते हैं। समिति ने ध्यान दिलाया कि आई.सी.सी.पी.आर. के अनुच्छेद 2(1) और 26 की भेदभाव से जुड़ी धारा में 'यौन' के उल्लेख में 'यौनिक अभिरुचि' को भी शामिल किया जाना चाहिए। किसी भी व्यक्ति को उसकी यौनिक अभिरुचि के आधार पर आई.सी.सी.पी.आर. में निश्चित किए गए अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता। 'टूटन बनाम तस्मानिया' को देखें (संचार पर विचार, संख्या 488/1992, 31 मार्च 1994 में स्वीकृत संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार समिति)। इस समिति ने सब राज्यों से अपील की है कि वे न केवल उन कानूनों को रद्द करें जो समलैंगिकता को आपराधिक मानते हैं बल्कि अपने संविधानों या अन्य मौलिक कानूनों में यौनिक अभिरुचि पर आधारित भेदभाव पर रोक लगाएं। (निर्णायक टिप्पणियां : पोलैण्ड, 29 जुलाई 1999, संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार समिति)।

अन्य मानव अधिकार मॉनिटरिंग से जुड़ी संयुक्त राष्ट्र की संस्थाओं ने भी इस बात पर ज़ोर दिया है कि अंतर्राष्ट्रीय कानूनी मापदण्डों के अंतर्गत यौनिक अभिरुचि पर आधारित भेदभाव मना है। इनमें बाल अधिकारों की समिति, महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभावों को समाप्त करने की समिति (सीडॉ) और आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की समिति (आम टिप्पणी 14, पैरा 18) शामिल हैं।

धारा 377, भारतीय दण्ड संहिता (आई.पी.सी.)

ऐमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया का मानना है कि **भारत सरकार द्वारा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 का बचाव अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार कानून का एक जान बूझकर और सुविचारित रूप से किया गया उल्लंघन है,** विशेषकर आई.सी.सी.पी.आर. के अंतर्गत भारत की प्रतिज्ञा को ध्यान में रखते हुए।

ऐमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया इस बात का समर्थन करती है कि नाज़ फाउण्डेशन वाले मसले में भारत सरकार का अपने निवेदन में यह कहना कि आम राय समलैंगिक व्यवहार के पक्ष में नहीं है, इस मुद्दे को धुंधला करने का एक प्रयास है। भारत सरकार का निवेदन समाजशास्त्रीय और कानूनी कहानियां बनाकर उपनिवेशवादी कानूनी विरासत को बचाकर रखने के एक प्रयास को प्रस्तुत करता है।

कानून केवल एकांत में अधिकारों को स्वीकार करके, सार्वजनिक तौर पर उन्हें नकार नहीं सकता। कानून मानव अधिकारों के सिद्धांतों और मापदण्डों पर आधारित होना चाहिए, वह आंख मूंदकर जनता की राय के अनुसार नहीं चल सकता। अगर ऐसी ही बात होती तो छुआछूत, बाल विवाह, बाल मज़दूरी आदि को कानूनी मान्यता मिल जानी चाहिए, क्योंकि समाज में ये सब व्यापक रूप से प्रचलित और स्वीकृत हैं। इसके अतिरिक्त धारा 377 बाल यौन उत्पीड़न से निपटने के लिए बिल्कुल उपयुक्त नहीं है और वास्तव में यह बाल यौन उत्पीड़न के मामले में मुकदमा चलाने में एक बाधा ही है।

भारत सरकार तथा अन्य लोगों द्वारा यौनिक पहचान के अधिकार के मुद्दे को एक 'पश्चिमी' धारणा के रूप में प्रस्तुत करने के प्रयास किए गए हैं। यह दृष्टिकोण इस बात को अनदेखा करता है कि बढ़ती संख्या में 'दक्षिणी' देशों में यौनिक अभिरुचि के आधार पर भेदभाव करना वर्जित हो रहा है। इन देशों में फिलिपीन्स, दक्षिण अफ्रीका, मैक्सिको, और बुलगैरिया शामिल हैं। अन्य राज्यों जैसे इंडोनेशिया, कज़ाकिस्तान, चिली, रोमेनिया और अज़रबैजान में सहमति–प्राप्त वयस्क समलैंगिक संबंधों को आपराधिक नहीं माना जाता।

एशिया में ताईवान, जापान, थाइलैण्ड और सिंगापुर की सरकारों में यौनिक अभिरुचि के प्रति बढ़ती चेतना के बावजूद नाज़ फाउण्डेशन वाले मामले में भारत सरकार का यह जवाब आया है।

ऐमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया ने धारा 377 को तुरंत रद्द करने, किसी भी व्यक्ति की यौनिक अभिरुचि या पहचान के विरुद्ध भेदभाव से कानूनी सुरक्षा पाने और अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार मापदण्डों के अनुसार बाल यौन उत्पीड़न पर अलग कानून बनाने की मांग की है।

'वॉयसिज़ अगेन्स्ट 377' नामक बैनर के नीचे विभिन्न नागरिक सामाजिक समूहों द्वारा चलाए जा रहे अभियान को ऐमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया पूरी तरह समर्थन देता है। ऐमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया का मानना है कि केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता दांव पर नहीं लगी है, बल्कि व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक संपूर्णता का बुनियादी मानव अधिकार और भेदभाव से स्वतंत्रता का अधिकार दांव पर लगा हुआ है।

यह सिर्फ लेस्बियन, गे, बाइसेक्स्युअल या ट्रान्सजेंडर्ड समुदाय का मुद्दा नहीं है, बल्कि यह मानव अधिकारों का मुद्दा है जो हम सब से जुड़ा हुआ है। यदि हम किसी भी समूह के अधिकारों का हनन होने देते हैं, तो हम मानव अधिकारों के सुरक्षा प्रदान करने वाले ढांचे के केंद्रीय आधार को हटा कर – सभी मनुष्यों के समान अधिकारों व गरिमा को क्षति पहुंचाते हैं। इसलिए एमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया नागरिक समाज के सभी वर्गों से एक अन्यायपूर्ण कानून को रद्द करने के इस अभियान को समर्थन देने की अपील करता है।

साक्ष्य : मानसिक स्वास्थ्य संस्थाओं के साथ हुए अनुभव

गीता दिल्ली में स्थित 'संगिनी' नाम के एक ऐसे समूह की सदस्य है जो उन औरतों के लिए है जो औरतों के प्रति आकर्षित हैं। सन् 2002 में दिल्ली में एक आम सभा आयोजित हुई जिसमें ऑस्ट्रेलिया से आए न्यायमूर्ति कर्बि को आमंत्रित किया गया था। गीता ने उस सभा में मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े अपने अनुभव बांटे। 13 वर्ष की उम्र से गीता को यह महसूस होता था कि वो 'ठीक' नहीं है और वो 'सामान्य' बच्चों जैसी नहीं है। उसके माता–पिता को भी ऐसा लगता था। उन्होंने उसे एक ऐसे मनोचिकित्सक के पास भेजा जिसने उसकी यौन प्रवृत्ति को 'ठीक' करने के लिए उसे 'शॉक थेरेपी' दी यानी कई बार उसे बिजली के झटके दिए। इस प्रक्रिया को प्रताड़ना ही कहा जा सकता है। गीता के अधिकतर बाल गिर गए, उसकी ज्ञानात्मक क्षमताएं धीमी पड़ गईं और अपने शरीर पर हुए निरंतर अतिक्रमणों के कारण उसकी ऐसी स्थिति बनी जिस पर उसका अपना कोई नियंत्रण नहीं था। उसी दौरान गीता ने अपने माता–पिता को भी खो दिया। माता–पिता के मरने के बाद वह केट और लुईसा से मिली और उसका जीवन बदलने लगा। एक ऐसी औरत जो शारीरिक व मानसिक उत्पीड़न से गुज़र चुकी है, आज इस स्थिति में है कि वह भरी सभा में कह सकती है कि वह लेस्बियन है।

न्यायमूर्ति कर्बि ने गीता को अपनी साहसभरी कहानी के लिए धन्यवाद दिया और कहा कि उसकी और उसके जैसी अनेकों कहानियों की यह विडम्बना है कि शॉक थेरेपी अपने तथाकथित उद्देश्य (यौनिक प्रवृत्ति को बदलना) को प्राप्त करने में असफल रहती है। उन्होंने गीता से पूछा कि क्या इस चिकित्सा ने उसकी यौनिक प्रवृत्ति को ज़रा भी बदला है और उसने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया 'नहीं'। इस जवाब में गीता के साथ सभा में बैठे और सदस्यों की आवाज़ें भी शामिल हुईं।

[1] *स्रोत : जनवरी, 2002 को न्यायमूर्ती कर्बि के साथ हुई सार्वजनिक बैठक में गीता द्वारा दिया गया बयान।*

यौनिकता और मानसिक स्वास्थ्य

ऐतिहासिक तौर पर मनोविज्ञान का प्रयोग समलैंगिक लोगों को वैज्ञानिक रूप से 'बीमार' और 'रोगग्रस्त' घोषित करने के लिए किया गया है। इस प्रक्रिया में विषमलैंगिकता को 'सामान्य' ठहराया गया है। हालांकि ये मनोवृत्तियां अभी भी प्रचलित हैं, बहुत से मानसिक स्वास्थ्य व्यावसायिक, अंतर्राष्ट्रीय नैतिक सिद्धांत और आचार संहिताएं, सरकारें, मनोचिकित्सीय तथा मनोविश्लेषण संस्थाएं और मानव अधिकार के शपथपत्र इस नज़रिए को बदलने की कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने इस धारणा का सफलतापूर्वक खण्डन किया है कि समलैंगिकता एक मानसिक रोग है।[1]

औपचारिक रूप से भारतीय मनोचिकित्सीय सोसाइटी अंतर्राष्ट्रीय विश्व स्वास्थ्य संगठन और अमरीकी मनोचिकित्सीय संस्थान के मानसिक स्वास्थ्य दिशा–निर्देशों (गाइड लाइन्स) को स्वीकार करती है। ये दिशा–निर्देश अंतर्राष्ट्रीय तौर पर मान्यता प्राप्त डाइगनौस्टिक एण्ड स्टैटिस्टिकल मैनयुअल ऑफ मेन्टल डिस्ऑर्डर (डी.एस.एम.) में दिए गए हैं। डी.एस.एम. के अंदर समलैंगिकता को अब मानसिक रोग नहीं समझा जाता है। इसके अतिरिक्त दिशा–निर्देशों के अनुसार ऐसी कोई भी सुधारात्मक चिकित्सा किसी भी तरीके से किसी व्यक्ति की यौनिक प्रवृत्ति को बदलने का प्रयत्न नहीं कर सकती।[2] इन नियमों की बात करते हुए डॉ. संदीप वोहरा जो अपोलो अस्पताल के वरिष्ठ परामर्शी मनोचिकित्सक हैं, दिल्ली मनोचिकित्सीय सोसाइटी के अध्यक्ष और भारतीय मनोचिकित्सीय सोसाइटी के सदस्य भी हैं, ने कहा है कि "हमारी स्थिति ज्यों की त्यों है। समलैंगिकता कोई रोग नहीं है और हम उसे इसी नज़रिए से देखेगें।"[3] लेकिन वास्तविकता यह है कि भारत में मानसिक स्वास्थ्य संस्थाओं और उनसे संबंधित जगहों में अभी भी मानसिक स्वास्थ्य व्यावसायिकों एवं संस्थाओं के पूर्वाग्रहों के कारण व्यक्तिगत, शारीरिक और भावनात्मक हिंसा एवं उत्पीड़न होती है। ऐसा करने में वे धारा 377 को अपनी ढाल बनाते हैं।

समलैंगिक इच्छा और मानसिक स्वास्थ्य

समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों पर पारिवारिक तथा सामाजिक दबाव, उनका अपनी व्यक्तिगत यौनिकता के साथ संघर्ष, धारा 377 का भय, अपमान और अन्य मानव अधिकारों के उल्लंघन – बहुतों को संपूर्ण मानसिक तथा भावनात्मक स्वास्थ्य के अभाव की ओर ले जा सकते हैं और ले जाते हैं। फोन पर मदद करने वाली हेल्पलाइनों और समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों के सहायता समूह (सपोर्ट ग्रुप) के अनुभव और लेस्बियन आत्महत्याओं पर जांच दलों की रिपोर्टें – समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों के मानसिक स्वास्थ्य सरोकारों को उजागर करती हैं। इनमें उदासी (डिप्रेशन), खुदकुशी करने की इच्छा,

[1] *देखें "सेम सेक्स डिज़ायर एण्ड मैन्टल हैल्थ : ऐन इन्टरनैशनल ओवर व्यू", पृष्ठ 32*

[2] *पूरे प्रस्ताव के लिए देखें – http//www.apa.org/pi/lgbpolicy/against.htm1*

[3] *यह कथन अरविंद नारायण और तरुनभ खेतान के लेख "मेडिकलाइज़ेशन ऑफ होमोसेक्सुऐलिटि : अ ह्यूमन राइट्स अप्रोच" में उद्धृत किया गया है।*

शराब और चरस जैसे पदार्थों पर निर्भरता शामिल हैं। लेस्बियन और बाइसेक्स्युअल महिलाओं के समूह 'सहयात्रिका' द्वारा आयोजित मानसिक स्वास्थ्य व्यावसायिकों की विचार गोष्ठी (त्रिवेन्द्रम, नवम्बर 2002) में भाग लेने वाले बहुत से लोगों ने कहा कि व्यावसायिक काउन्सलरों में व्याप्त गलतफहमियों में एक यह है कि समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों में मानसिक खुशहाली की कमी है। यह धारणा यौनिक प्रवृत्ति को एक 'रोग' मानने से सीधे जुड़ी हुई है। लेकिन जैसा कि बहुत से मानसिक स्वास्थ्य व्यावसायिकों ने उस दिन कहा कि मानसिक खुशहाली के लिए समलैंगिकता विरोधी विचारधारा (होमोफोबिया) को ठीक करने की आवश्यकता है, न कि यौनिक प्रवृत्तियों को।

एक आदर्श स्थिति में मानसिक स्वास्थ्य व्यावसायिकों से सहायता मांगी जाएगी और प्राप्त भी की जाएगी। लेकिन अक्सर मानसिक स्वास्थ्य व्यावसायिक परिवार के दबाव की वजह से 'मरीज़' को ठीक करना चाहते हैं। उसे मानसिक तनाव से उबरने में मदद नहीं करते हैं और न ही उसको अपनी यौनिकता के साथ एक सहज रिश्ता बनाने में मदद करते हैं। यदि कोई अपनी मर्ज़ी से भी सहायता प्राप्त करने के लिए आता है, तो उसे मानसिक स्वास्थ्य व्यावसायिक के उन सभी समलैंगिकता विरोधी पूर्वाग्रहों का सामना करना पड़ता है जो उनकी खुशहाली के अभाव का कारण हैं। जो व्यक्ति मदद के लिए आता है उसके अधिकारों के प्रत्यक्ष उल्लंघन का इन पूर्वाग्रहों के अलावा यौनिकता और यौनिक चुनावों से जुड़ी जानकारी का अभाव भी एक कारण है। जानकारी का अभाव भी अपने आप में एक व्यवस्थित रूप से भेदभाव करना है। विश्वसनीय और सही जानकारी का अभाव तथा उसे प्राप्त करने में जो मुश्किलें हैं, वे व्यक्ति की खुशहाली में बाधाओं को बढ़ाती ही हैं। उदाहरण के लिए, ऐसी जानकारी का एक उद्देश्य होना चाहिए समलैंगिक यौनिकताओं की वैधता को स्थापित करना और समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों को सहयोग देने वाले समूहों तथा समुदायों के बारे में बताना। लेकिन जब तक धारा 377 वयस्क, सहमति–प्राप्त समलैंगिक व्यवहार को आपराधिक करार करेगी, इस तरह के बहुत से परिवर्तन नहीं लाए जा सकते।

धारा 377 एक मुख्य वजह है जिसके कारण समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों के विरुद्ध मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े उल्लंघनों के बारे में अभी भी एक चुप्पी है। मानव अधिकारों का हनन होने पर उनके पास विरोध करने का कोई तरीका नहीं है। शारीरिक, आर्थिक और अन्य स्तरों पर अतिक्रमण करने वाली अनुचित चिकित्सा के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। उसपर विरोध करने में कई खतरे भी हैं – उनकी यौनिकता के बारे में खुलासा, सामाजिक निन्दा, यहां तक कि उनके खिलाफ कानूनी कार्यवाही भी हो सकती है। इसके आगे अधिकारों के हनन का एक और उदाहरण है – 'सुधारात्मक चिकित्सा'। इसका इस्तेमाल मानसिक स्वास्थ्य व्यावसायिकों द्वारा समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों का 'इलाज' करने में होता है। सुधारात्मक चिकित्साओं का उद्देश्य है दवाओं से मितली पैदा करके, बिजली के झटके देकर और/या व्यवहार में बदलाव की चिकित्सक प्रक्रियाओं के द्वारा 'मरीज़' की यौनिक प्रवृत्ति को बदलना। नीचे दिया गया उदाहरण एक समलैंगिक पुरुष के सुधारात्मक चिकित्सा के अनुभव का विवरण देता है।

> "मैं यह मानकर एक मनोचिकित्सक के पास गया कि वह मेरी मदद करेगा। उसने 'मदद' तो की। उसने कहा, "ये सब तुम्हारे दिमाग में ही है।" उसने सहजता से मुझे बताया कि मेरी उदासी (डीप्रेशन) के दौरे (जो मुझे कभी पता ही नहीं चला कि समलैंगिक प्रवृत्ति को

> दबाने से पैदा हुए) एक बीमारी है जिसे सिज़ोफ्रेनिया कहते हैं। "तुम्हारा समलैंगिक होना भ्रम एवं विभ्रम की वजह से है।" उसने 'ओरैप' और 'सीरीनैस' लेने का निर्देश लिखकर दिया जोकि बहुत तेज़ स्नायु रोग संबंधी दवाइयां हैं। एक भयानक सपना शुरू हुआ जो शरीर व आत्मा का विनाश करते हुए पन्द्रह सालों तक चला। मरने की आशा करते हुए मैंने 'ओरैप' को अधिक मात्रा में खा लिया, पर मैं मरा नहीं। मुझे बचा लिया गया। पुरस्कार स्वरूप मुझे बिजली के झटके दिए गए जिनकी वजह से दो सालों तक मेरी याददाश्त पर बहुत बुरा असर पड़ा। मेरे मिजाज़ हमेशा उजाड़ रहते, मेरी इंद्रियां मंद और सोच अस्पष्ट रहती।"
>
> *– हेमंत, 'नारायण और खेतान' से उद्धृत।*

अरविंद नारायण और तरुनभ खेतान ने *मेडिकलाइज़ेशन ऑफ होमोसेक्स्यूऐलिटि : ए ह्यूमन एप्रोच* नामक लेख में उस भयानक सुधारात्मक चिकित्सा की चर्चा की है, जिसका हेमंत ने कितनी सजीवता से बयान किया है। सबसे पहला तथ्य है कि सुधारात्मक चिकित्सा समलैंगिकता को एक रोगात्मक स्थिति मानती है, जिसमें यौनिक स्वतंत्रता, पसंद और विविधताओं को अभिव्यक्त करने की बजाय चिकित्सीय परिवर्तन की आवश्यकता होती है। दूसरा तथ्य यह है कि मितली पैदा करने वाली दवाइयां, बिजली के झटके इत्यादि न केवल 'मरीज़' की गरिमा का अतिक्रमण करती हैं, ये एक तरह से यंत्रणा के रूप हैं। तीसरा यह कि सुधारात्मक चिकित्सा की अवधारणा इस सोच पर आधारित है कि समलैंगिकता एक बीमारी है, उसका मानना है कि आखिरकार सभी समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों की यौनिकता बदलने की आवश्यकता है। हालांकि उनके जीवन की इच्छाएं, सरोकार और बारीकियां – और साथ ही साथ चिकित्सक के अपने पूर्वाग्रह – महत्त्वपूर्ण हैं, पर उन्हें अप्रासंगिक बताया जाता है।

सुधारात्मक चिकित्सा का डरावनापन, किस तरह धारा 377 की मौजूदगी मनोचिकित्सक के पास आए लोगों की पीड़ा को और बढ़ा देती है तथा किस तरह उन्हें अपने संवैधानिक अधिकार तथा कानूनी हक़ मांगने से रोकती है – इन सबका प्रभावी ढंग से सार प्रस्तुत करता है आगे के पृष्ठ पर आने वाली सत्य घटना का बयान। जब तक कानून ज्यों का त्यों बना रहेगा, मानसिक स्वास्थ्य व्यावसायिकों के अन्दर कोई बदलाव नहीं लाया जा सकता है और इस तरह के मामले निरपराध लोगों के जीवन तबाह करते रहेंगे।

सुधारात्मक चिकित्सा, धारा 377 और मानव अधिकारों का उल्लंघन

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (ए.आई.आई.एम.एस.) के एक ऐसे मरीज़ के मामले में याचिका दायर की गई थी, जिसका इलाज पिछले चार सालों से वहां के मनोचिकित्सा विभाग के डॉक्टर द्वारा किया जा रहा था, ताकि उसकी समलैंगिकता को सुधारा जा सके। मरीज़ को खुद लगा कि, "जो पुरुष अपनी यौनिकता के बारे में उलझे हुए हैं उन्हें विषमलैंगिकता की ओर वापिस जाने का मौका देने की ज़रूरत है। मैं खुद कभी अस्पष्ट या उलझा हुआ नहीं था, फिर भी मुझसे कहा गया कि मेरी समलैंगिकता का इलाज करना होगा। डॉक्टर ने मुझे दवाइयां देनी शुरू कीं जो मैं चार सालों से खा रहा हूं।"

मरीज़ नाज़ फाउण्डेशन, इण्डिया के पास गया (एक संस्था जो यौनिकता और स्वास्थ्य से जुड़े मुद्दों पर कार्य करती है)। वहां के प्रॉजेक्ट कॉर्डिनेटर ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (एन.एच.आर.सी.) में शिकायत दर्ज की और अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान पर अपने मरीज़ के साथ मनोचिकित्सीय दुर्व्यवहार का आरोप लगाया। तथाकथित इलाज में दो तत्त्व शामिल थे – परामर्श चिकित्सा और दवाइयां। परामर्श चिकित्सा सत्रों के दौरान डॉक्टर ने मरीज़ को स्पष्ट रूप से बताया कि उसे अपनी समलैंगिता की मनोकल्पना (फंतासी) पर नियंत्रण रखना होगा। इसके अतिरिक्त उसे कहा गया कि वह पुरुषों की बजाय स्त्रियों को अपनी इच्छा का विषय बनाना शुरू करे। डॉक्टर ने मरीज़ की यौनिक प्रवृत्ति को बदलने के इरादे से दवाइयां भी दीं, औपचारिक नुस्खे द्वारा दवाइयों की पहचान बताने की बजाय अपने पास से खुली दवाइयां दीं। मरीज़ बताता है कि वह गंभीर भावनात्मक तथा मनोवैज्ञानिक आघात और क्षति के अतिरिक्त व्यक्तिगत अतिक्रमण का अनुभव कर रहा है।

जैसे ही याचिका दायर की गई यौनिक अल्पसंख्यक समुदाय का व्यापक जमाव शुरू हुआ और बहुत सारे पत्र राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को लिखे गए, यह अनुरोध करते हुए कि आयोग यौनिक अल्पसंख्यक समुदाय के अधिकारों की रक्षा करे। शिकायत (संख्या 3920) दर्ज करने के बाद अंततः राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने उसे अस्वीकार करने का निर्णय लिया। उसके अध्यक्ष के साथ अनौपचारिक बातचीत से पता चला कि उनका मानना है कि जब तक धारा 377 रहेगी, कुछ नहीं किया जा सकता। उन्होंने यह भी कहा कि वैसे भी इनमें से अधिकतर संस्थाएं विदेशी अनुदान प्राप्त करती हैं और उनके पास कोई वास्तविक ज़मीनी स्तर पर समर्थन भी नहीं था। आयोग के अन्य स्रोत के अनुसार, "भारतीय दण्ड संहिता के तहत समलैंगिकता तो एक अपराध है न? क्या आप चाहते हैं कि हम एक ऐसी बात पर ध्यान दें जो कि अपराध है?"

(द पायनिअर, 2 अगस्त 2001)

साक्ष्य : पुनः यौन निर्धारण (सेक्स रीअसाइनमेंट) सर्जरी को मान्यता नहीं देना

यौन परिवर्तन ऑपरेशन के द्वारा 1987 में तरुलता (33) तरुण कुमार नामक पुरुष बनीं और दिसम्बर 1989 में लीला चावड़ा (23) से शादी की। इससे पहले वे दोनों पांच सालों तक नज़दीकी दोस्त थीं। इसे एक लेस्बियन संबंध होने का दावा करते हुए लीला के पिता ने गुजरात उच्च न्यायालय में याचिका दायर की कि शादी को रद्द किया जाए। (इंडिया टुडे, अप्रैल 15, 1990)।

उन्होंने दावा किया : तरुण कुमार के पास न कोई पुरुष अंग है और न ही सहवास, यौनिक संभोग और बच्चे पैदा करने का कोई प्राकृतिक तरीका है। अप्राकृतिक तरीकों को अपनाने से पुरुषत्व पैदा नहीं होता और वैसे भी तरुण कुमार पुरुष नहीं है।

आपराधिक कार्यवाही के लिए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 की याचना की गई। यह तर्क दिया गया कि तरुण कुमार जन्म के समय हिन्दू पुरुष नहीं था। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी समेत सर्जरी करने वाले डॉक्टर और विवाह रजिस्ट्रार को नोटिस जारी कर दिया।

उसी अंक में इंडिया टुडे ने साहसी जोड़े के ये शब्द पत्रिका में छापे : "हमारे रिश्ते में कुछ असामान्य नहीं है क्योंकि हम किसी भी अन्य विवाहित दम्पती की तरह ही रहते हैं। यदि न्यायालय हमारी शादी को रद्द कर भी दे तो भी हम साथ ही रहेंगे क्योंकि हम एक दूसरे से भावनात्मक रूप से जुड़े हैं।"

[1] *'स्रोत : लैस दैन गे', 1991*

धारा 377 और एच.आई.वी./एड्स हस्तक्षेप व रोकथाम के प्रयास

यह बात सर्वज्ञात है कि सत्ता की असमानता किसी समुदाय या व्यक्ति के एच.आई.वी./एड्स के प्रति खतरे को निर्धारित करती है। उदाहरण के रूप में उस पत्नी या यौनकर्मी का विचार तुरंत दिमाग में आता है, जो पुरुष यौन साथी के साथ कंडोम के बारे में बात करना भी शुरू नहीं कर सकती। इससे साफ होता है कि किस तरह निर्बलता खतरे को जन्म देती है। समाज में व्याप्त मानसिकताएं समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों, जिनमें लेस्बियन, गे, बाइसेक्स्युअल, हिजड़ा और ट्रान्सजेंडर्ड लोग शामिल हैं, के लिए अपनी इच्छाओं और यौनिक अभिरुचियों को व्यक्त करना लगभग असंभव बना देती हैं। जब उनकी बात आती है जिन्हें इच्छा का अनुभव होना ही नहीं चाहिए (अर्थात् महिलाएं), या जिन्हें विशेष प्रकार की इच्छाओं (अर्थात् गे पुरुष, लेस्बियन महिलाएं, हिजड़े, यौनकर्मी, कोथी) का अनुभव नहीं होना चाहिए, वहां एच.आई.वी./एड्स रोकथाम के काम में और गंभीर समस्या आ जाती है। धारा 377, जो लगभग सभी गैर–प्रजनक यौन क्रियाओं को आपराधिक करार देती है (और उन्हें अकथनीय बना देती है), के हावी होने से एच.आई.वी./एड्स रोकथाम के प्रभावशाली प्रयास कर पाना और कठिन हो जाता है। संक्षेप में कहें तो हमें एक लड़ाई लड़नी होगी।

जिनकी यौनिकता विषमलैंगिक कायदों से हट कर है उन लोगों को अधिकांशतः बुनियादी मानव अधिकार न मिलने के कारण एच.आई.वी./एड्स का अधिक खतरा है। इन अधिकारों का हनन सदियों पुरानी धारा 377 की वजह से संभव है और मान्य भी। भारतीय विधि आयोग की 172वीं रिपोर्ट (25 मार्च, 2000) में सिफारिश की गई थी कि धारा 377 को रद्द कर देना चाहिए। इसके बावजूद यह कानून आज भी मौजूद है। गे पुरुष, लेस्बियन महिलाएं, हिजड़े, यौनकर्मी (महिला, पुरुष या ट्रान्सजेंडर्ड) और कोथी (शारीरिक तौर पर पुरुष जो पुरुषों के साथ यौन क्रियाएं करते हैं और अपने को महिला महसूस करते हैं) सभी के लिए एड्स की महामारी का खतरा और अधिक बढ़ गया है। संक्षिप्त आंकड़ों और दस्तावेज़ीकृत शोधों ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 द्वारा एच.आई.वी./एड्स रोकथाम व हस्तक्षेप के प्रयासों के लिए पैदा की गई मुश्किलों व अड़चनों – विशेषकर पुरुष संभोग या एम.एस.एम. लोगों के बीच – के बारे में चर्चा की है।

गैर–विषमलैंगिक व्यक्तियों और समुदायों के साथ चल रहे एच.आई.वी./एड्स रोकथाम व हस्तक्षेप के प्रयासों पर धारा 377 के प्रतिकूल प्रभावों को सभी स्तरों पर महसूस किया जा सकता है :

1. धारा 377 उन सामाजिक कलंक और पूर्वाग्रहों को उचित ठहराती है जिनके कारण हाशिए की यौनिकताओं के लोगों को परामर्श तथा स्वास्थ्य सेवाएं प्राप्त करने में हिचकिचाहट होती है। जबकि ये एच.आई.वी./एड्स की रोकथाम व उसे कम करने के लिए बहुत ज़रूरी हैं। सामाजिक कलंक माने जाने के चलते एच.आई.वी./एड्स हस्तक्षेप कार्यक्रमों के पास अक्सर विभिन्न यौनिकताओं की जानकारी या समझ नहीं होती जिससे कि वे हस्तक्षेप कर सकें और खतरा कम करने के प्रयासों पर कारगर तरीके से प्रभाव डाल सकें। यहां तक कि उनके द्वारा जब उचित हस्तक्षेप का नियोजन किया

भी जाता है, हाशिए के समुदायों के सदस्यों को अक्सर संदेह रहता है कि उनकी यौनिकता के बारे में जानकारी को सार्वजनिक बना दिया जाएगा। तार्किक रूप से ये सब कारण बहुत से लोगों को स्वास्थ्य सेवाएं प्राप्त करने से रोकते हैं।

2. कानूनी रूप से आपराधिक ठहराए जाने का डर और खतरा, सामाजिक भेदभाव और कलंक माने जाने के कारण हाशिए की यौनिकता के लोगों के लिए सुरक्षित सामाजिक जगहों की कमी है। इसलिए यौन क्रियाएं भी जल्दबाज़ी में चोरी–छिपे होती हैं, जहां दूसरे व्यक्ति को ज़रूरत पड़ने पर भी सुरक्षित यौन क्रियाएं अपनाने के लिए दबाव देने का मौका नहीं होता। इस वजह से एच.आई. वी. संक्रमण का खतरा और बढ़ जाता है।

3. एच.आई.वी. संक्रमण के खतरे को कम करने से संबंधित गतिविधियों – जैसे कि इन समुदायों के बीच कंडोम को बढ़ावा देने या बांटने – को धारा 377 के अंतर्गत आपराधिक कार्य करने को उकसाने और सहायता देने के रूप में देखा गया है। एम.एस.एम. (मैन हू हैव सेक्स विद मैन – वे पुरुष जो अन्य पुरुषों के साथ शारीरिक संबंध रखते हैं) लोगों के लिए सुरक्षित यौन संबंधित जानकारी पर भी अक्सर आपराधिक रूप से अश्लील सामग्री होने का लेबल लगा दिया जाता है और फिर उसे राज्य के दावेदारों द्वारा ज़ब्त कर लिया जाता है (जैसा 2001 में लखनऊ की घटना में देखा गया, जिसका विवरण नीचे दिया गया है)।

4. धारा 377 यौनिक रूप से हाशिए के लोगों को समुदाय के अंदर और समुदाय के लिए सहायता समूह बनाने के लिए निरुत्साहित करता है। प्रभावशाली एच.आई.वी./एड्स रोकथाम और हस्तक्षेप के प्रयास कारगर हों, इसके लिए ऐसे सहायता समूह आवश्यक हैं।

5. अधिकारों के ये सभी उल्लंघन उस अधिकार आधारित दृष्टिकोण के बिल्कुल विरुद्ध हैं जिसे राष्ट्रीय एड्स रोकथाम एवं नियंत्रण (नाको) की नीति ने मान्यता दी है। नीति में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि जिन लोगों को एच.आई.वी. संक्रमण का सबसे ज़्यादा खतरा है, उनके अधिकारों का आदर करना ही एकमात्र ऐसा रास्ता है जिससे एच.आई.वी. को रोका या कम किया जा सकता है। हालांकि एम.एस.एम. लोगों का उल्लेख नाको के दस्तावेज़ों में किया गया है और एम.एस.एम. लोगों के साथ काम करने वाले कुछ समूहों को नाको से अनुदान भी मिला है – कोई भी जन जागरुकता संदेश इन्हें संबोधित नहीं करता। दिलचस्प यह है कि नाको तक यह मानता है कि एम.एस.एम. जन समुदाय तक पहुंचना बहुत ज़रूरी है। लेकिन धारा 377 इस जन समुदाय तक किसी भी तरह की सुरक्षित पहुंच को असंभव बना देती है और देश में एक एकीकृत और प्रभावी एड्स नियंत्रण नीति बनाना असंभव कर देती है।

नाको का यह स्वीकारना कि समाज में एम.एस.एम लोग हैं – इस बात को देश में एच.आई.वी./एड्स रोकथाम और शिक्षा के लिए बड़े पैमाने पर विदेशी पैसे के बहाव के संदर्भ में रखना ज़रूरी है। इन अनुदानों ने अनिवार्य कर दिया है कि भारत सरकार अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर प्रगतिशील दिखे। जून 2001 में संयुक्त राष्ट्र की सामान्य सभा में एच.आई.वी./एड्स पर एक विशेष सत्र के दौरान अंतर्राष्ट्रीय गे और लेस्बियन मानव अधिकार आयोग को शामिल करने के लिए समर्थन देने में हमारी सरकार काफी आगे

थी। फिर भी हाल ही में जेनेवा (मई 2003) में हुई संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार समिति की बैठक में भारत उन देशों में से एक था, जो ब्राज़ील द्वारा प्रस्तावित 'मानव अधिकार और यौनिक अभिरुचि' के ऐतिहासिक प्रस्ताव पर होने वाली चर्चा को 2004 तक स्थगित करने की बात कर रहे थे।

एच.आई.वी./एड्स के प्रति राज्य का पाखंड और अधिक सामने आया जब लखनऊ में एम.एस.एम. लोगों के साथ एच.आई.वी./एड्स संबंधित मुद्दों पर काम करने वाली गैर–सरकारी संस्थाओं – भरोसा ट्रस्ट और नाज़ फाउण्डेशन इन्टरनेशनल (एन.एफ.आई.) के कार्यकर्त्ताओं को सन् 2001 में गिरफ्तार किया गया। (परिशिष्ट–हल्ला बोल – देखें।) यह घटना भारत सरकार के संयुक्त राष्ट्र सामान्य सभा के विशेष सत्र में ऊपर बताए गए प्रगतिशील रुख दिखाने के ठीक 12 दिन बाद की है (परिशिष्ट – दायां हाथ नहीं जानता कि बायां हाथ क्या कर रहा है – देखें।) जिन आरोपों के तहत गिरफ्तारी हुई थी उसमें धारा 377, आपराधिक षड्यंत्र, उकसाना और अश्लील सामग्री रखना/बेचना शामिल थे। एक वकील की रिपोर्ट के अनुसार गिरफ्तारी के बाद चारों कार्यकर्त्ताओं को "पीटा गया, खाना नहीं दिया गया, गंदे नाले का पानी पीने के लिए मजबूर किया गया, लगातार दुर्व्यवहार किया गया और जब वे बीमार हुए तो इलाज के लिए मना कर दिया गया।" उस समय लखनऊ के पुलिस अधीक्षक श्री बी.बी. बक्षी ने सार्वजनिक तौर पर कहा था – "मैं समलैंगिकता को खत्म करना चाहता हूं, जो कि भारतीय संस्कृति के खिलाफ है।" लखनऊ वाली घटना से दो बातें साफ हैं। एक यह कि राज्य अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपने दावों को नहीं निभा पाया है। दूसरा यह कि राज्य यौनिक रूप से हाशिए के लोगों को स्वास्थ्य अधिकारों को प्राप्त करने से रोकता है, और जो ऐसा करने का प्रयास करते हैं उनको दण्डित करता है।

परिशिष्ट

धारा 377 – पर्चा

क्या आप भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 के बारे में जानते हैं? यह बालिग लोगों के बीच आपसी रज़ामंदी से की गई यौन क्रियाओं को आपराधिक करार देती है।

क्या आप जानते हैं कि बाल यौन उत्पीड़न करने वाले को दण्डित करने के लिए हमारे पास कानून नहीं है, लेकिन ऐसा कानून है जो कहता है कि अपने बेडरुम के एकांत में भी आप मुख मैथुन करना चाहें तो नहीं कर सकते, चाहे आप शादीशुदा ही क्यों न हों?

क्या आप जानते हैं कि बच्चे के साथ यौन दुर्व्यवहार करने वाले एक व्यक्ति को छोड़ दिया गया था क्योंकि जज के मुताबिक जिस बच्चे के साथ उसने यौन दुर्व्यवहार किया था, वह बच्चा इतना छोटा था कि समझ नहीं सका कि उसकी मर्यादा का उल्लंघन हुआ है।

क्या आप जानते हैं कि दो महिलाओं को जेल हुई और उन्हें नौकरी से निकाल दिया गया क्योंकि वे एक–दूसरे से शादी करना चाहती थीं?

क्या आप जानते हैं कि धारा 377 राज्य को नागरिकों के बीच भेदभाव करने की अनुमति देती है; कि वह पुलिस को समलैंगिक पुरुषों को तंग करने और उन्हें धमका कर पैसे वसूल करने के लिए बढ़ावा देती है?

क्या आप जानते हैं कि धारा 377 हमारे संविधान द्वारा सभी नागरिकों के लिए सुरक्षित किए गए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है? और उसका असर ऐसा होता है कि लोग नौकरी ही नहीं, जान तक खो देते हैं।

क्या आप जानते हैं कि एच.आई.वी. से कितने लोग मारे गए, क्योंकि अपने डॉक्टर को वे यह बताने से डरते थे कि वे समलैंगिक हैं?

अनगिनत

क्या आप जानते हैं कि पुलिस द्वारा कितने समलैंगिक पुरुषों का बलात्कार किया गया है?

अनगिनत

क्या आप जानते हैं कि कितनी लेस्बियन लड़कियों को शादी करने के लिए जबरन मजबूर किया जाता है?

अनगिनत

अपने दिमाग की खिड़कियां खोलें – यह सवाल है जीने–मरने का।

स्रोत : प्रिज़्म का पर्चा

समान तथा अहस्तान्तरणीय अधिकार – पर्चा

मानव परिवार के सभी सदस्यों की अंतर्निहित गरिमा और सम्मान तथा अहस्तान्तरणीय अधिकारों को पहचानना ही स्वतंत्रता, न्याय और विश्व में शांति का आधार है*

हम लेस्बियन, गे, बाइसेक्स्युअल, ट्रान्सजेंडर्ड, हिजड़ा, विषमलैंगिक, ट्रान्ससेक्स्युअल हैं और हमें जीने का, स्वतंत्रता का और व्यक्ति की सुरक्षा का अधिकार है

हमारी एकांतता, पत्र या घर–व्यवहार हस्तक्षेप का विषय नहीं होने चाहिए और न ही हमारी मर्यादा और प्रतिष्ठा आक्रमण का विषय होनी चाहिए

हमें हर जगह कानून के सामने एक इंसान के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए

हमें कानून के सामने समान होने का अधिकार है और हम बिना किसी भेदभाव के समान सुरक्षा के हकदार हैं

हमें राय कायम करने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। इसमें बिना किसी दखलंदाज़ी के अपनी राय बनाने की आज़ादी और बिना किसी सरहद पर ध्यान दिए किसी भी माध्यम से जानकारी और विचारों को प्राप्त करने एवं बांटने का अधिकार भी शामिल है

हमें शांति से एकत्र होने और संघ बनाने की स्वतंत्रता का अधिकार है

हमें एक संपूर्ण तथा स्वास्थ्यवर्धक जीवन का अधिकार है।

**यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स,* युनाइटेड नेशन्स जेनरल असेम्बली

स्रोत : प्रिज़्म का पर्चा

जीने का अधिकार : रद्द – पर्चा

4 अक्टूबर 2002 : तमिलनाडु के सत्यमंगलम जंगल में दो औरतों की लाश मिली। जब उनके रिश्ते के बारे में लोगों को पता चल गया तो उन्होंने ज़हर खा कर अपनी जान ले ली। मरने से पहले लिखे गए पर्चे में उन्होंने अपने मां–बाप से भीख मांगी कि कम से कम उन्हें मरने के बाद एक दूसरे से जुदा न किया जाए।

12 नवम्बर 2002 : गुजरात के भुज इलाके में दो औरतों ने अपने आप को चलती हुई रेलगाड़ी के सामने फेंक दिया। ऐसा करने से पहले उन्होंने पर्चे में यह लिखा कि वे अपनी जान इसलिए लेना चाहती थीं क्योंकि उनकी शादी तय हो गई थी, पर वे एक दूसरे से बिछड़ना नहीं चाहती थीं।

13 नवम्बर 2002 : केरल में अपने घर के पास कॉफी के बगान में दो औरतों ने ज़हर खा लिया। उनमें से एक की उसी दिन सगाई होनी थी और दूसरी की शादी जनवरी में होनी थी। अस्पताल जाते–जाते दोनों की मौत हो गई।

क्या इन औरतों के लिए मौत ही एक मात्र रास्ता था?

बलात्कार, यौनिक अत्याचार और दहेज हत्या के अलावा औरतों पर हिंसा तब भी होती है जब किसी की शादी उसकी मर्ज़ी के खिलाफ की जाती है। औरतों के खिलाफ हिंसा तब भी होती है जब कोई औरत अपनी खुशी को खुद की नज़रों में एक गुनाह समझती है, जब किसी औरत को अपनी जान लेनी पड़ती है क्योंकि उसकी ख्वाहिश समाज को कुबूल नहीं है।

दो औरतों के आपसी अटूट रिश्ते के कारण जान गंवाना इस बात की गवाही है कि समाज हर औरत के जिस्म और मानव अधिकारों को अपनी गिरफ्त में रखने की कोशिश करता है।

हम इन मौतों को सभी औरतों के खिलाफ हिंसा मानते हैं और हम सब इस हिंसा का विरोध करते हैं।

आश्रय अधिकार अभियान, एक्शन इंडिया, ब्रेक थ्रू, क्रिया, ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क, जागोरी, कृति टीम, निरंतर, प्रिज़्म, सहेली, संगत, विकासिनी, लायर्स कलेक्टिव – एच.आई.वी./एड्स यूनिट एण्ड डब्ल्यू.आर.आई.

समलैंगिक इच्छा और मानसिक स्वास्थ्य

सारे विश्व में अनगिनत मानसिक स्वास्थ्य विद्या शास्त्रों के चिकित्सा संघों और विभागीय निकायों ने समलैंगिकता के साथ जुड़े कलंक को खत्म कर दिया है और 'सुधारात्मक चिकित्सा' या परिवर्तन चिकित्सा को स्पष्ट रूप से वर्जित किया है। अमरीकी मनो–विश्लेषणात्मक संघ का सन् 1984 का बयान समलैंगिकता का वर्णन करने के क्रम में शायद बेहतरीन तरीके से वैश्विक चिकित्सा संस्थानों के विचारों का सार प्रस्तुत करता है :

> "... न मानसिक बीमारी न ही नैतिक पतन। यह सिर्फ एक तरीका है जिससे हमारी जनसंख्या का अल्पसंख्यक हिस्सा इंसानी प्रेम तथा यौनिकता को अभिव्यक्त करता है। एक के बाद एक अध्ययन गे पुरुषों तथा लेस्बियन महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य का दस्तावेज़ीकरण करते हैं। निर्णय, स्थिरता, विश्वसनीयता और सामाजिक व व्यावसायिक अनुकूलीकरण के अध्ययन, ये सब दर्शाते हैं कि गे पुरुष तथा लेस्बियन महिलाएं हर तरह से उतनी ही अच्छी तरह काम करते हैं जितने कि विषमलैंगिक।
>
> कुछ लोगों की सोच के विपरीत ऐसा नहीं है कि नए नैतिक नियमों या नैतिक लोकाचारों के साथ जनसंख्या में अब पहले से ज़्यादा समलैंगिकता पाई जाती है। शोध निष्कर्षों से ऐसा लगता है कि समलैंगिकों को ठीक करने के प्रयास मनोवैज्ञानिक साजो–सामान में लिपटे सामाजिक पूर्वाग्रहों से अधिक कुछ भी नहीं हैं।"

व्यावसायिक स्वास्थ्य और चिकित्सा संस्थाओं द्वारा हाल के बयानों में निम्नलिखित शामिल हैं[1]

अंतर्राष्ट्रीय

- **विश्व स्वास्थ्य संगठन**[2] ने 1981 में समलैंगिकता को अपनी मानसिक बीमारियों की सूची में से निकाल दिया था।
- **अमरीकी मनोचिकित्सीय संघ**[3] ने 1973 में समलैंगिकता को अपनी मानसिक बीमारियों की सूची में से निकाल दिया था, हालांकि इगो–डिसटोनिक समलैंगिकता को डी.एस.एम. के अंदर रखा था। अमरीकी मनोवैज्ञानिक एसोसिएशन[4] ने भी इसी तरह 1975 में समलैंगिकता को अपनी रोगों की सूची में से निकाल दिया था।

---

[1] *पूरे प्रस्तावों के लिए देखें – www.ngltf.org*

[2] *पूरा प्रस्ताव – www.who.org पर उपलब्ध है*

[3] *अमेरिकन साकिएट्रिक एसोसिएशन की समलैंगिकता पर सोच http//www.psych.org/public_info/homose~1.cfm पर उपलब्ध है*

[4] *अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन की 'गाइडलाइन्ज़ फॉर साइकोथेरेपी विद लेस्बियन, गे एण्ड बाइसेक्स्युल क्लाइन्ट्स' के लिए देखें – http//www.apa.org/pi/lgbc/guideline.html#top*
और उसकी 'पॉलिसी स्टेटमेन्ट्स ऑन लेस्बियन एण्ड गे इशूज़' के लिए देखें – http//www.apa.org/pi/statemen.html

भारत से उठी आवाज़ें

- **इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च**[1] द्वारा हाल ही में जारी किए गए दिशा–निर्देशों में 'कोड ऑफ प्रैक्टिस ऐथिकल कन्सिडरेशन एण्ड लीगल इशूज़ (क्रियान्वयन से जुड़ी नियमावली, नैतिक सोचविचार और कानूनी मुद्दे) को शामिल किया गया है। कृत्रिम प्रजनन तकनीक (आर्टिफिशियल रीप्रोडक्टिव टेक्नोलॉजी – ए.आर.टी.) के प्रयोग की बात करते समय इसका कहना यह है कि : जो अविवाहित महिलाएं या लेस्बियन अथवा समलैंगिक पुरुषों के जोड़े ए.आर.टी. द्वारा बच्चा चाहते हैं, उन्हें यह सेवा देने से कोई भी ए.आर.टी. क्लीनिक मना नहीं कर सकता, बशर्ते इस दस्तावेज़ में उल्लिखित अन्य मापदण्ड संतोषजनक हों। इस तकनीक से पैदा हुए बच्चे को महिला या पुरुष पर सभी अधिकार प्राप्त होंगे।
- **अपोलो अस्पताल** के वरिष्ठ परामर्शी मनोचिकित्सक, **दिल्ली मनोचिकित्सीय सोसाइटी** के अध्यक्ष, डॉ. संदीप वोहरा के अलावा **भारतीय मनोचिकित्सीय सोसाइटी** के सदस्य का कहना है : "हमारी स्थिति ज्यों की त्यों है। समलैंगिकता कोई रोग नहीं है और हम उसे इसी नज़र से देखेंगे।"[2]

एशिया

- **चीन की मनो–विश्लेषणात्मक एसोसिएशन** ने 2001 में संकल्प लिया जिसके अनुसार 1973 की ए.पी.ए. द्वारा दिए गए दिशा–निर्देशों को स्वीकार किया गया और इसके बाद चीन में समलैंगिकता को रोगात्मक विकार (पैथलॉजिकल डिसऑर्डर) के रूप में देखने वाले सभी उल्लेखों को हटा दिया गया।
- **थाईलैण्ड में मानसिक स्वास्थ्य विभाग** ने विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 1993 में जारी किए गए दिशा–निर्देशों को स्वीकार करते हुए घोषणा की कि समलैंगिकता कोई मानसिक रोग नहीं है।

उत्तरी अमरीका

- **अमरीकी चिकित्सा संघ** (अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन – ए.एम.ए.) ने दिसम्बर 1994 में एक रिपोर्ट जारी की जो "चिकित्सकों द्वारा यौनिक अभिरुचि को गैर आलोचनात्मक रूप से देखने का" आग्रह करती है।
- **बाल चिकित्सा अकादमी**[3] (अकेडेमी ऑफ पीडिऐट्रिक्स) और बाल तथा किशोर स्वास्थ्य परिषद् (काउंसिल ऑन चाइल्ड एण्ड ऐडोलेसेन्ट हैल्थ) ने भी बयान दिया कि समलैंगिकता कोई रोग नहीं है और सुधारात्मक चिकित्सा किशोरों के लिए बहुत नुकसानदेह हो सकती है।

---

[1] *दिशा निर्देशों के लिए देखें – http//icmr.nic.in/home.htm*

[2] *अरविंद नारायण और तरुनभ खेतान के लेख 'मेडिकलाइज़ेशन ऑफ होमोसेक्स्युऐलिटि : ह्यूमन राइट्स अप्रोच 'से*

[3] *पॉलिसी स्टेटमेन्ट – 'होमोसेक्स्युऐलिटि एण्ड एडोलेसेन्स', अमेरिकन अकेडिमी ऑफ पीडिऐट्रिक्स, 1993 अक्टूबर*

- 1991 में अमेरिकन अकेडेमी ऑफ पीडिऐट्रिक्स, अमेरिकन काउंसलिंग एसोसिएशन, एसोसिएशन ऑफ स्कूल एडमिनिस्ट्रेटर्स, अमेरिकन फेडेरेशन ऑफ टीचर्स, अमेरिकन साइकॉलॉजिकल एसोसिएशन, अमेरिकन स्कूल, हैल्थ एसोसिएशन, इंटरफेथ अलाएन्स फाउंडेशन, नेशनल एसोसिएशन ऑफ स्कूल साइकॉलॉजिस्ट्स, नेशनल एसोसिएशन ऑफ सोशल वर्कर्स और नेशनल एड्यूकेशन एसोसिएशन ने संयुक्त रूप से एक दस्तावेज़ जारी किया जिसका शीर्षक थाः 'जस्ट द फैक्ट्स अबाउट सेक्स्युअल ओरियेंटेशन!' (यौनिक अभिरुचि के बारे में केवल तथ्य!) इसके साथ उन्होंने गे तथा लेस्बियन युवाओं के उत्पीड़न पर चिंता जताई, सुधारात्मक चिकित्सा की संभावित रूप से नुकसानदेह और थोड़े या बिल्कुल अप्रभावकारी चिकित्सा के रूप में निंदा की।

अंतर्राष्ट्रीय सरकारें और कानून

- **उत्तरी अमरीका :** महाद्वीप के सभी देशों में समलैंगिकता कानूनी रूप से मान्य है और अधिकतर स्थानों में यौनिक अभिरुचि के आधार पर भेदभाव करना गैर–कानूनी है।
- **यूरोप :** यूरोपिअन यूनियन के मौलिक अधिकारों के घोषणा–पत्र में जिसे 2000 में स्वीकार किया, यौनिक अभिरुचि को भेदभाव के निषिद्ध आधारों में शामिल किया गया। गे शादियों और गे एवं लेस्बियन जोड़ों को **नीदरलैण्ड, बेलजियम** और **डेनमार्क** की सरकारों ने संपूर्ण अधिकार प्रदान करने का ज़िम्मा लिया। **स्वीडन, फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी, स्पेन, पुर्तगाल** और **स्विट्ज़रलैण्ड** – सभी समलैंगिक घरेलू संबंधों को स्वीकार करते हैं तथा समलैंगिकों के प्रति भेदभाव को वर्जित करते हैं।
- **अफ्रीका : दक्षिण अफ्रीका** का संविधान यौनिक अभिरुचि के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को वर्जित करता है।
- **दक्षिण अमेरिका : अर्जेनटीना, ब्राज़ील, इक्वाडोर, ग्वाटेमाला** तथा **बेलीज़** समेत **मध्य अमरीका** के सभी देश समलैंगिकता के प्रति सभी भेदभावों को वर्जित करते हैं और समलैंगिक जोड़ों के अधिकारों को मान्यता देते हैं।
- **एशिया : चीन, दक्षिण कोरिया, ताईवान, जापान, थाईलैण्ड, लाओस, कम्बोडिया** और **वियतनाम** में समलैंगिकता कानूनी है[1]।

[1] *स्रोत : www.utpopia-asia.com*

हल्ला बोल! – पर्चा

मानव अधिकार कार्यकर्त्ताओं को रिहा करो! गैर सरकारी संस्थाओं को तंग करना बंद करो!

7 जुलाई 2001 को उत्तर प्रदेश की पुलिस ने लखनऊ में भरोसा ट्रस्ट तथा नाज़ फाउण्डेशन इन्टरनेशनल (एन.एफ.आई.) के कार्यालयों पर छापा मारा और उनके कार्यकर्त्ताओं को गिरफ़्तार किया। दोनों संस्थाएं पुरुषों के साथ यौन संबंध रखने वाले पुरुष (एम.एस.एम.) समुदाय के साथ एच.आई.वी./एड्स कार्यक्रम चलाती हैं। एन.एफ.आई. विशेष रूप से एच.आई.वी./एड्स कार्यक्रमों को तकनीकी सहायता प्रदान करती है। कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारी के बाद सभी को पुलिस थाने में मारा–पीटा गया।

पुलिस ने एम.एस.एम. लोगों के लिए सुरक्षित यौन व्यवहार शिक्षा से जुड़े साहित्य व सामग्री को ज़ब्त कर लिया, जिसके आधार पर उन्होंने कार्यकर्त्ताओं पर अश्लील सामग्री की बिक्री आदि का आरोप लगाया। उससे भी अधिक गंभीर आरोप हैं प्रकाशनाधिकार (कॉपीराइट) और 'महिलाओं का अश्लील निरूपण अधिनियम' का उल्लंघन। आखिर के दो आरोप, उत्तर प्रदेश पुलिस की मानसिकता को दर्शाते हैं, जो सारे राज्य में गैर–सरकारी संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं को तंग कर रही है और भयभीत कर रही है। यह स्मरणीय है कि हाल ही में एक गैर–सरकारी संस्था पर राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत आरोप लगाया गया था और अन्य गैर–सरकारी संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं को नक्सलाइट करार दिया गया था। इस मामले में भी गुप्तचर विभाग द्वारा कार्यकर्त्ताओं से पाकिस्तान के आई.एस.आई. के साथ 'संभावित संबंधों' की जांच के लिए पूछताछ की गई।

कार्यकर्त्ताओं पर भारतीय दण्ड संहिता की प्राचीन धारा 377 के अंतर्गत आरोप लगाया गया, जो सहमति–प्राप्त यौन व्यवहार को आपराधिक करार देती है। वह भी तब जब खुद पुलिस की रिपोर्ट के मुताबिक, गुदा मैथुन का कोई मामला है ही नहीं। फिर भी मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और सेशन कोर्ट ने इस आधार पर उनकी ज़मानत मंजूर नहीं की कि ये 'समाज के लिए एक अभिशाप' हैं। कानून के अंतर्गत ये आधार मान्य नहीं हैं।

इस पुलिस कार्यवाही का भारत के सभी स्वास्थ्य कार्यक्रमों और एच.आई.वी./एड्स पर गैर–सरकारी संस्थाओं द्वारा किए जा रहे काम पर गंभीर असर पड़ा है। ये संस्थाएं यौन कर्मी, नशा इस्तेमाल करनेवाले और एम.एस.एम. जैसे जन समुदायों के साथ काम करती हैं, जिन्हें एच.आई.वी./एड्स का बहुत खतरा है। पुलिस समेत राज्य के अन्य अंगों द्वारा इनके दुर्व्यवहार व उत्पीड़न का रास्ता खुल जाता है।

भरोसा ट्रस्ट का एच.आई.वी./एड्स कार्यक्रम भारत सरकार द्वारा निर्धारित दिशा–निर्देशों के अंदर ही काम कर रहा था। अन्याय और बढ़ जाता है जब हम याद करें कि सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर के मंच पर संयुक्त राष्ट्र सामान्य सभा के एच.आई.वी./एड्स पर एक विशेष सत्र में साफ कहा कि लेस्बियन, गे, बाइसेक्स्युअल और ट्रान्ससेक्स्युअल लोग एक अति संवेदनशील समुदाय हैं जिन्हें एच.आई.वी./एड्स कार्यक्रमों में ज़रूर शामिल किया जाना चाहिए। कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध आरोप और

उनको जेल में लगातार बंद किया जाना न्याय की विकृति है और न केवल बंदियों पर बल्कि एम.एस. एम. के एच.आई.वी./एड्स से संबंधित स्वास्थ्य से जुड़ी जानकारी प्राप्त करने के अधिकार पर सीधा आक्रमण है।

स्वास्थ्य का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन के मौलिक अधिकार में शामिल है और एम.एस.एम. लोगों को किसी सामाजिक नज़रिए के कारण स्वास्थ्य की जानकारी पाने से इन्कार नहीं किया जा सकता। न ही स्वास्थ्य की जानकारी देने के लिए किसी को अपराधी ठहराया जा सकता है।

हम मांग करते हैं कि गिरफ़्तार कार्यकर्त्ताओं को तत्काल छोड़ दिया जाए और उनके विरुद्ध सभी आरोपों को समाप्त कर दिया जाए।

दायां हाथ नहीं जानता कि बायां हाथ क्या कर रहा है – पर्चा

(यह पर्चा भरोसा कांड के बाद सन् 2001 में छापा गया था)

भारत सरकार द्वारा हाल ही में यौनिक अल्पसंख्यकों से संबंधित दिए गए बयानों/कार्यवाहियों पर एक नज़र :

25 मार्च 2000 को भारत के कानून आयोग की 172वीं रिपोर्ट (बलात्कार के कानून का पुनरावलोकन) सुझाव देती है कि धारा 377 को रद्द किया जाए। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'हमारा विचार है कि धारा 377 रद्द करने लायक है।'

26 जून 2001 को भारत ने अंतर्राष्ट्रीय गे तथा लेस्बियन मानव अधिकार संघ (IGLHRC) को संयुक्त राष्ट्र सामान्य सभा में एच.आई.वी./एड्स पर एक विशेष सत्र के विचार–विमर्शों से बाहर रखने के प्रयास का प्रबलतापूर्वक विरोध किया। यह प्रयास 'इस्लामिक सम्मेलन की संस्था' के 57 देशों का था। भारत सरकार ने स्पष्ट रूप से कहा कि IGLHRC को शामिल न करना 'एक बहुत गलत मिसाल' कायम करेगा। यह भी कहा कि सरकार ने गे तथा लेस्बियन लोगों को एक 'महत्त्वपूर्ण जनसंख्या के रूप में स्वीकार किया है, जिनकी एच.आई.वी./एड्स से संबंधित ज़रूरतों को संबोधित किया जाना चाहिए और सरकार इस समुदाय के स्वास्थ्य से जुड़े खतरों को मिटाने के लिए सहायक कार्यक्रमों का आयोजन करती है।

6 जुलाई 2001 को केन्द्रीय स्वास्थ्य राज्यमंत्री, श्री सी.पी. ठाकुर स्टार न्यूज़ पर आते हैं और सरकार के एच.आई.वी. से जुड़े प्रयासों में गे, लेस्बियन, बाइसेक्स्युअल और ट्रान्सजेंडर्ड लोगों को शामिल करने की प्रतिबद्धता को दोहराते हैं।

7 जुलाई 2001 को उत्तर प्रदेश की पुलिस ने लखनऊ में भरोसा ट्रस्ट तथा नाज़ फाउण्डेशन इन्टरनेशनल के कार्यालयों पर छापा मारा और उनके कार्यकर्त्ताओं को गिरफ़्तार किया।

30 जुलाई 2001 को इस्लामिक सम्मलेन की संस्था के साथ भारत ने भी सितम्बर में डर्बन, दक्षिण अफ्रीका में होने वाले जातिभेद के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय गे और लेस्बियन मानव अधिकार संघ को स्थान न देने के लिए अपना मत दिया।

एच.आई.वी./एड्स पर काम करने वाली गैर–सरकारी संस्थाओं के लिए सरकार की नीति : राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण नीति विशेष तौर पर, 'पुरुषों के साथ यौन संबंध रखने वाले पुरुषों' (एम.एस.एम.) को एक अधिक खतरे वाले व्यवहार की श्रेणी में उल्लिखित करती है और इसलिए हस्तक्षेप की आवश्यकता को स्वीकारती है।

सरकार के हलफनामे पर एक खुला पत्र

दिल्ली उच्च न्यायालय के सामने 9 सितम्बर 2003 को धारा 377 से जुड़ी याचिका पर पेश किए गए सरकार के हलफनामे (ऐफिडेविट) की झलकियां

कानून आयोग की 42वीं रिपोर्ट का उद्धरण देते हुए सरकार का दावा है कि "सामान्यतः भारतीय समाज समलैंगिकता को अस्वीकार करता है और उसे आपराधिक करार देने के लिए अस्वीकृति का यह तर्क काफी मज़बूत था, भले ही वयस्क लोग निजी तौर पर इसमें भाग लेते हों।"

केन्द्रीय सरकार ने कहा कि कानून में प्रस्तावित परिवर्तन, "आपराधिक व्यवहार का द्वार खोल सकते हैं और इसके लिए इनका अर्थ अनियंत्रित लाइसेंस के रूप में लगाया जा सकता है।"

धारा 377 को न्यायसंगत ठहराते हुए केन्द्र ने कहा, "भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 का उद्देश्य अप्राकृतिक यौन क्रियाओं को आपराधिक करार देकर समाज में स्वस्थ वातावरण प्रदान करना है।"

याचिका दायर करने वाले के इस आरोप कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 समानता के अधिकार (अनुच्छेद 14), स्वतंत्रता के अधिकार (अनुच्छेद 19) और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार (अनुच्छेद 21) का उल्लंघन करती है, का जवाब देते हुए केन्द्र ने कहा कि "इनमें से किसी भी अधिकार का उल्लंघन नहीं किया गया है" और इनमें से हर अधिकार पर विवेकपूर्ण नियंत्रण लगाया जा सकता है।

सरकार ने दावा किया कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 का उपयोग बुनियादी तौर पर बाल यौन उत्पीड़न में दण्ड तथा बलात्कार कानून में कमी के पूरक के रूप में किया जाता है और समलैंगिक व्यवहार को दण्डित करने के लिए इसका प्रयोग बहुत ही कम किया गया है।

सरकार ने इस मुद्दे पर गैर सरकारी संस्थाओं के हस्तक्षेप करने के अधिकार पर भी प्रश्न उठाते हुए कहा, "कानून के द्वारा जिनके अधिकारों पर सीधे प्रभाव पड़ता है उनके अतिरिक्त कोई और उसकी वैधानिकता पर प्रश्न नहीं उठा सकता।"

9 सितम्बर 2003 को नाज़ फाउण्डेशन, इंडिया द्वारा दिल्ली के उच्च न्यायालय में न्यायालय से निजी, वयस्क सहमति–प्राप्त यौनिक व्यवहार को गैर–आपराधिक घोषित करने के लिए दायर की गई याचिका के जवाब में सरकार ने हलफनामा प्रस्तुत किया। सरकार का जवाब बहुत ही गंभीर चिंता का विषय है। यह नज़रिया सरकार की उस भूमिका का उल्लंघन करता है जिसके तहत सभी नागरिकों के बुनियादी अधिकारों को बनाए रखना है।

सरकार का हलफनामा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 का समर्थन करता है, जिसमें कहा गया है कि "जो कोई भी स्वैच्छिक रूप से किसी पुरुष, महिला या पशु के साथ प्राकृतिक व्यवस्था के विरुद्ध

कामुक संभोग करता है, उसे आजीवन या 10 वर्षों की कैद की सज़ा दी जाएगी।" राज्य द्वारा प्रस्तुत तर्कों का आदर करते हुए सजग नागरिकों और महिलाओं के समूहों, बाल अधिकार समूहों, मानव अधिकार संस्थाओं, यौनिक अल्पसंख्यक समूहों और गैर सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों के रूप में हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं किः

क) राज्य इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि धारा 377 भारतीय नागरिकों के अधिकारों का उल्लंघन करती है। अपने वर्तमान स्वरूप में धारा 377 यौनिक अभिव्यक्ति के अधिकार को नकारती है। समलैंगिक यौनिक क्रियाओं के अतिरिक्त गैर–प्रजनक विषमलैंगिक क्रियाएं, जिनमें मुख व गुदा मैथुन शामिल हैं, भी इसी कानून के दायरे के अंदर आते हैं। इसके अलावा धारा 377 जीवन तथा स्वतंत्रता के अधिकार, कानून के सामने स्वास्थ्य तथा समानता के अधिकार और समाज के बहुत से वर्गों जैसे कि लेस्बियन, गे, बाइसेक्स्युअल, ट्रान्सजेंडर्ड और हिजड़ों के लिए भेदभाव से मुक्ति के अधिकार का उल्लंघन करती है। धारा 377 से ये लोग रोज़मर्रा प्रभावित होते हैं। उनकी अभिरुचियों से जुड़े कलंक इतने गंभीर हैं कि उनके परिवार वाले उनका परित्याग कर देते हैं, डॉक्टर बिजली का झटका देकर इलाज करते हैं, पुलिस उनका निर्दयता से उत्पीड़न करती है और वे भेदभाव के विरुद्ध कानूनी क्षतिपूर्ति भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। पुलिस द्वारा ध ाारा 377 के तहत निषिद्ध कार्य करने और कराने के लिए उकसाने का आरोप लगाकर गैर सरकारी संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं को धमकाने के लिए भी धारा 377 का इस्तेमाल किया जाता है। ये ऐसी संस्थाएं हैं जो कंडोम वितरित करती हैं और उन समुदायों के बीच सुरक्षित यौन शिक्षा देती हैं, जिनमें एच.आई.वी. वायरस के फैलने का ज़्यादा खतरा है – उदाहरण के लिए पुरुष जो पुरुषों के साथ यौन संबंध रखते हैं।

ख) नैतिकता खतरे में है – इस तरह की भाषा बोलकर राज्य इन वास्तविक मानव अधिकार उल्लंघनों से ध्यान हटाने की कोशिश कर रहा है। सरकार का यह तर्क कि कानूनी सुधार नहीं किए जा सकते क्योंकि सामान्यतः भारतीय समाज समलैंगिकता को अस्वीकार करता है बुनियादी रूप से गलत है। सरकार उन नागरिकों के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं कर सकती जो उनके विचार से 'भारतीयता की परिभाषा से बाहर' हैं। भारतीय संस्कृति एकरूप नहीं है, इसे भेदभाव करने के बहाने के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। विविध यौनिक अभिव्यक्तियां भारतीय इतिहास और उसकी संस्कृति का एक भलीभांति दस्तावेज़ीकृत हिस्सा हैं। इसके अलावा कानूनों का उद्देश्य न्याय के उन सिद्धांतों को प्रतिष्ठापित करना है जिनका पालन भारतीय समाज को करना चाहिए। अगर सभी कानूनों को लोकप्रिय जनमत के आधार पर बनाया गया होता, तो सती विरोधी और दहेज विरोधी जैसे प्रगतिशील कानून बनाना कभी संभव ही नहीं हो पाता।

ग) सरकार के द्वारा जानबूझ कर बार–बार यह दावा करना एकदम झूठ है कि यह याचिका न्यायालय के लिए बच्चों को यौन उत्पीड़न से बचाने में बाधक होगी। यह याचिका धारा 377 को रद्द करने के लिए नहीं है, बल्कि सिर्फ सहमति–प्राप्त निजी वयस्क यौनिक व्यवहार को गैर–आपराधिक घोषित करने के लिए है। यदि याचिका सफल होती है तो बाल यौन उत्पीड़न के मामलों में राज्य द्वारा धारा 377 को प्रयोग करने की क्षमता पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

लेस्बियन, गे, बाइसेक्स्युअल और ट्रान्सजेंडर्ड लोगों के अधिकारों का समर्थन करने वाले व उनकी पुष्टि करनेवाले व्यक्ति विशेषों या समूहों के रूप में हम मांग करते हैं कि सरकार जेण्डर तथा यौनिक अभिरुचि पर आधारित भेदभाव को रोके तथा कानून द्वारा सभी नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करे। इस दिशा में सहमति–प्राप्त वयस्कों के बीच यौन संबंध को गैर–आपराधिक घोषित करना अत्यंत आवश्यक है। किसी दूसरे नागरिक के अधिकारों का उल्लंघन किए बिना संपूर्ण सहमति से लोग क्या करना चाहते हैं, इस पर नियंत्रण करना या निर्णय लेना सरकार का काम नहीं है। लेकिन बाल यौन उत्पीड़न जैसे घृणित अपराध पर अभियोग लगाने के लिए प्रभावकारी कानून का निर्माण करना सरकार का काम है।

अपने हलफनामे में सरकार ने कहा है कि प्रत्येक बुनियादी अधिकार 'विवेकपूर्ण नियंत्रणों' का विषय हो सकता है। लाखों लोगों को उचित स्वास्थ्य सुविधाएं प्राप्त करने से रोकना, उनकी यौनिक अभिरुचि पर आधारित व्यापक रूप से फैले भेदभाव को संबोधित न कर पाना, पुलिस द्वारा उत्पीड़न से उन्हें सुरक्षा प्रदान न कर पाना और भारतीय संस्कृति को बचाने के नाम पर सहमति–प्राप्त यौनिक क्रियाओं को आपराधिक करार देना किसी भी मापदण्ड के हिसाब से 'उचित नियंत्रण' नहीं है। हम सरकार से आग्रह करते हैं कि वह अपने नज़रिए पर दोबारा विचार करे और प्रत्येक नागरिक के मौलिक अधिकारों को 'मानव अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा (यूनिवर्सल डेक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स) और भारतीय संविधान की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने का प्रयास करे।

धारा 377 से जुड़ी याचिका का घटना क्रम

2001 – नाज़ फाउण्डेशन, इण्डिया ने लॉयर्स कलेक्टिव के माध्यम से दिल्ली उच्च न्यायालय में जनहित याचिका दायर की। मांग थी कि प्रौढ़ों के बीच, एंकान्त में, सहमति प्राप्त यौन को गैर–कानूनी नहीं माना जाए।

जनवरी 2002 – दिल्ली उच्च न्यायालय को महान्यायवादी को नोटिस दिया

सितंबर 2003 – भारत सरकार ने जवाब दिया, याचिका का विरोध करते हुए

नवंबर 2004 – दिल्ली उच्च न्यायालय ने याचिका को खारिज किया, यह कहते हुए कि नाज़ फाउण्डेशन, इण्डिया पर कोई कानूनी आरोप नहीं लगाया गया है। याचिका मान्य नहीं। जो लोग सीधे रूपसे प्रभावित हैं वो ही याचिका दायर कर सकते हैं।

अक्तूबर 2004 – दिल्ली उच्च न्यायालय में याचिका की मान्यता/वैधता को लेकर पुनः विचार करने के लिए 'रिव्यू पेटिशन' दिया गया।

नवबंर 2004 – दिल्ली उच्च न्यायालय ने 'रिव्यू पेटिशन' की अर्ज़ी को नकारा।

फरवरी 2005 – याचिका की मान्यता/वैधता को लेकर सर्वोच्च न्यायालय में एक खास याचिका – स्पेशल लीव पेटिशन – डाली गई।

अप्रैल 2005 – सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहा कि याचिका एक ऐसे मसले के बारे में है जिस पर चर्चा दुनिया भर में चल रही है। न्यायालय ने सरकार को याचिका की मान्यता/वैधता पर जवाब देने का आदेश दिया है।

प्रेस विज्ञप्ति

दिल्ली में धारा 377 के खिलाफ जन प्रदर्शन

1 जुलाई, जंतर मंतर, नई दिल्ली

यह जन प्रदर्शन धारा 377 के तहत किए गए अन्याय के खिलाफ एक सामूहिक आवाज है। सभी प्रगतिशील समूह और व्यक्ति इस पुरातन और दमनकारी कानून का विरोध करने के प्रयास में एकजुट हैं। यह एक ऐसा कानून है जिसके रहते समलैंगिक समुदायों को राजकीय व गैर–राजकीय दावेदारों द्वारा किए गए मानव अधिकारों के हनन से कोई सुरक्षा नहीं प्राप्त होती। यौनिकता से जुड़े मुद्दों पर जो चुप्पी छाई है, हम उसका विरोध करते हैं। हम समलैंगिकता के खिलाफ भेदभाव करने वाले नज़रिए का भी विरोध करते हैं। इसके अलावा हम "सार्वजनिक नैतिकता" की एक ही तरह की गई परिभाषा का भी विरोध करते हैं। इस जन प्रदर्शन के माध्यम से हम कांग्रेस द्वारा बनाई गई यू.पी.ए. सरकार से सीधे अनुरोध करते हैं कि वह ऐसे कदम उठाए जिससे धारा 377 के तहत हो रहा अन्याय खत्म हो। इस कानून के रहते बाल यौन उत्पीड़न पर एक ठोस नया कानून बनने में भी अड़चन पैदा होती है। नए कानून की सख्त ज़रूरत है और इसकी मांग लंबे समय से देशभर के बाल अधिकार समूहों द्वारा उठाई जा रही है।

हम यू.पी.ए. सरकार का ध्यान धारा 377 के खिलाफ दिल्ली उच्च न्यायालय में दर्ज की गई जनहित याचिका की ओर ले जाना चाहेंगे। याचिका की अगली सुनवाई 7 जुलाई, 2004 को है। याचिका धारा 377 की 'रीडिंग डाउन' की मांग रखती है, जिसके मुताबिक वयस्कों के बीच एकान्त में की गई सहमति–प्राप्त समलैंगिक यौन क्रियाएं गैर–कानूनी नहीं ठहराई जाएंगी।

आज जिस रूप में धारा 377 है, वह जीवन, स्वास्थ्य, सम्पत्ति और चयन की आज़ादी के अधिकारों तक समान पहुंच का उल्लंघन करती है। यह एक ऐसा कानून है जिसका प्रभाव हम सब पर पड़ता है – हमारी यौनिक अभिरुचि जो भी हो। यह कानून इस देश के मूलभूत आदर्शों, जनतंत्र, समानता, मानव अधिकारों के प्रति विश्वास, गरिमा और सभी के लिए हिंसा से मुक्ति के खिलाफ है। **अब धारा 377 के तहत हर तरह के भेदभाव खत्म होने चाहिए।**

वॉयसिज़ अगेन्स्ट 377